

॥ नमो सुयदेवयाए ॥

श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति, पाथडों

(जि. अहमदनगर)

के द्वारा

प्राकृत भाषा प्राज्ञ परीक्षा

के लिए नियुक्त

पाययकुसुमावली



प्रा. माधव. श्री. रणदिगे, एम्. ए.

प्राकृत-माली-विभागप्रमुख

छत्रपति शिवाजी महाविद्यालय, सातारा

वीर सं. २४९८ )

मूल्य रु. ३५/वेसे

( सन् १९७२

# सुवर्ण नामावली



सदुपदेशक- परमश्रद्धेय आचार्यसम्राट् बालब्रह्मचारी पंडितरत्न

१००८ श्री आनन्दकृष्णिजी महाराज

मूल आधारस्तम्भ- श्री गुलशनराय अँड सन्स देहली

आधार स्तम्भ- शाह केशवजी जवेरचन्द (जामनगरवाले)  
जालना, (महाराष्ट्र)

श्रीमान् सोहनलालजी जुगलकिशोरजी जैन  
लुधियाना, (पंजाब)

परामर्शदाता- डॉ. आ. ने. उपाध्ये एम्. ए. डी. लिट्.

डायरेक्टर ऑफ जैनलॉजी अँड प्राकृत म्हेसूर (कर्नाटक)

मार्गदर्शक- प्राचार्य एम्. वाय्. वेंच, एम्. ए. विद्यार्थिनी कॉलेज, धुळे

अध्यक्ष- श्रीमान् चंद्रभानजी रूपचन्दजी डाकलिया, श्रीरामपुर

कार्याध्यक्ष- श्रीमान् उत्तमचंदजी बोगावत (अँडव्होकेट) अहमदनगर

उपाध्यक्ष- श्रीमान् कांतीलालजी बाठिया पनवेल

कोषाध्यक्ष- श्रीमान् चुनीकालजी गुगले, पाथर्डी

मंत्री- (ट्रस्टमण्डल) श्रीमान् सुमनचन्दजी कुबेरिया, पाथर्डी

मंत्री कार्यकारिणी- पं. बदरीनारायण टा. शुक्ल, पाथर्डी

उपमंत्री- प्रा. मा. श्री रणदिवे. सातारा



॥ ॐ नमो सुयदेवयाए ॥

श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति, पाथर्डी

( जि. अहमदनगर )

के द्वारा

प्राकृत भाषा प्राज्ञ परीक्षा

के लिए नियुक्त

पाययकुसुमावली



प्रा. माधव. श्री. रणदिबे, एम्. ए.

प्राकृत-पाली-विभागप्रमुख

छत्रपति शिवाजी महाविद्यालय, सातारा

वीर सं. २४९८ ॥

सन् १९७२

( सन् १९७२ )

## **प्रकाशक—**

पं. बबरीनारायण द्वारिकाप्रसाद शुक्ल  
मन्त्री—श्रीप्राकृत भाषा प्रचार समिति  
पायडों (अहमदनगर)

## **प्रथमावृत्ति**

१०००

## **नम्र सूचन**

इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य  
पूर्ण होते ही नियत समयावधि में  
शीघ्र वापस करने की कृपा करें  
जिससे अन्य वाचकगण इसका  
उपयोग कर सकें.

## **मुद्रक—**

पं. बबरीनारायण द्वारिकाप्रसाद शुक्ल  
श्री सुधर्मा मुद्रणालय  
८१० मंत्री गली, पायडों (अहमदनगर)



## पुरस्कार -

भारतीय प्राच्य भाषाओं में प्राकृत का अपना अनोखा स्थान है। प्राचीन तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति का अच्छी तरह से आकलन होने के लिए और आधुनिक भारतीय भाषाओं के यथार्थ अध्ययन के लिए प्राकृत का यथायोग्य अध्ययन होना अत्यावश्यक है।

साहित्य के संपूर्ण शाखाओं से, विशेषतः कथात्मक साहित्य से प्राकृत सुसंपन्न है। माध्यमिक विद्यालयीन स्तर पर से व्याकरण के प्राश्नभूमि पर प्राकृत भाषा और साहित्य की जानकारी होने के बाद विद्यार्थियों की प्राकृत साहित्य के विविध क्षेत्रों में प्रवेश करने की जिज्ञासा निर्माण होती है। मैं बहुत प्रसन्नता से कहता हूँ की मनोरंजक और उद्बोधक पाठ चूना कर तैयार की गयी यह 'बाणकुसुमावली' विद्यार्थियों की यह जिज्ञासा पूरी कर सकती है। इसके प्रत्येक पाठ के आरंभ में मूलग्रंथ, ग्रंथकार, समय, आदि के बारे में प्रास्ताविक लिखकर अन्त में कठिन शब्दार्थ तथा प्रत्येक पाठ का शब्दशः अनुवाद दिया है। इसलिए यह पुस्तक विद्यार्थियों में प्राकृत भाषा और साहित्य की दिलचस्पी निर्माण करेगा ऐसी मेरी प्रामाणिक श्रद्धा है। इसलिए मैं प्रा. मा. श्री. रणदिवे का अभिनन्दन करता हूँ।

आजकल पाथर्डी में श्री प्राकृत भाषा प्राचार समिति अपने सामने बड़े आदर्श रख कर अभिनन्दनीय कार्य कर रही है यह बात अत्यंत श्लाघनीय है। समिति के इस अंगिकृत कार्य में दिन-प्रतिदिन प्रगति हो और नवचैतन्य प्राप्त यही मेरी हार्दिक सदिच्छा है।

कर्नाटक आर्ट्स कॉलेज  
धारवाड  
३१-५-१९७२

बी. के. खडबडी

## निवेदन -

श्रमण संस्कृति के प्रवर्तक भ. महावीर और भ. बुद्ध ने बहुजनहिताय बहुजनसुखाय ऐसा समतामयी मानवता का सन्देश आम जनता को समझाने के लिये उस समय की लोक भाषा प्राकृत-पाली के ही माध्यम से जगह-जगह घूम-घूम कर दिया ! श्रमणसंस्कृति के इन प्राकृत-पालि भाषाओं का महत्त्व जानकर समाजशुभचिन्तक परमोपकारी पण्डितरत्न बालब्रह्मचारी आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दकृषिजी महाराज ने लुधियाना के चातुर्मास में वीर संवत् २४९२ ( इ. स. १९६६ ) के भाद्रपद शुद्ध पंचमी के शुभ अवसर पर इन भाषाओं के तौलनिक अध्ययन के लिये जो प्रेरणा दी, उसका फलस्वरूप पाथर्डी में श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति की स्थापना होकर तब से यह समिति कार्यान्वित हो गई ।

फरवरी १९६८ से प्राकृत भाषा प्रथमा और द्वितीया परीक्षा के द्वारा समिति का परीक्षण कार्य शुरू हुआ । इसके आगे बी. ए. ऑनर्स तक का अभ्यासक्रम ( प्राकृत प्राज्ञ, प्राकृत प्रवीण और प्राकृत प्रभाकर ) भी तैयार किया गया है ।

समिति के आरंभकाल से ही प्रा. मा. श्री. रणदिवे अंतःकरण से सहयोग दे रहे हैं । अगले प्राकृत भाषा प्राज्ञ परीक्षा के लिए भी प्रा. रणदिवेजी ने 'पाययकुसुमावली' यह पाठ्यपुस्तक तैयार किया है इसलिये हार्दिक धन्यवाद !

( ५ )

कनाटिक आर्टस् कॉलेज, ब्यारवाड के प्राकृत विभाग प्रमुख डॉ. के. बी. खडबडी, एम्. ए. पी-एच्. डी. ने प्रस्तुत पुस्तक को पुरस्कार दे कर समिति के कार्य को उत्तेजना दी है । एतदर्थ हम उनके मनःपूर्वक आभारी है ।

प्राकृत भाषा द्वितीया परीक्षा पास तथा ग्री-डिग्री और बी. ए. पार्ट फर्स्ट ( या सत्सम कक्षा ) के विद्यार्थियों को प्राकृत प्राज्ञ परीक्षा में बैठाकर अध्यापक तथा प्राध्यापक समिति के कार्य आगे बढ़ावें यही सदिच्छा है ।

**पाथर्डी**

९ जून १९७२

**पं. बदरीनारायण शुक्ल**

‘जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शनशास्त्री’

मन्त्री तथा परीक्षाधिकारी

श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति, पाथर्डी

जि. बहमदनगर (महाराष्ट्र)

## अनुक्रमणिका -

पुरस्कार.

निवेदन.

१.	कविलमुणिचरियं	...	...	१
२.	कालगायरियकहा	...	...	५
३.	विवागदारुणो मायाचारो	...	...	११
४.	कमलाइं कहमे संभवन्ति	...	...	१५
५.	कुलवहू	...	...	१९
६.	थावच्चापुत्तस्स पाव्वज्जा	...	...	२२
७.	दमयन्तीसयंवरो	...	...	२५
८.	पदुमावदी उदअणस्स दिण्णा	...	...	३०
९.	मुक्खत्तणस्स पाहुडो	...	...	३५
१०.	नमुक्कारप्पभावो	...	...	३९
११.	वज्जालगं	...	...	४१
१२.	उज्जलसीलो दहमुहो	...	...	४५
१३.	बोहिदुल्लहकहा	...	...	४९
१४.	अगडदत्तस्स सम्माणो	...	...	५४
१५.	अप्पसरूवं	...	...	५८
१६.	कप्पूरमंजरीसिगारो	...	...	६१
१७.	पवयणसारो	...	...	६५
	कठिन शब्दार्थ	...	...	७३
	मराठी भाषांतर	...	...	१
	शुद्धिपत्रक	...	...	६१

१

## कविलमुणिचरियं

•

‘उत्तराध्ययणसूत्रं’ ( उत्तराध्ययनसूत्रम् ) इस जैनागम के मूलसूत्र पर श्रीदेवेन्द्राचार्य या ( नेमिचन्द्रसूरि ) ने ई. स. १०७३ में सुखबोधा नाम की संस्कृत में टीका लिखकर पूर्ण की। उन्होंने श्लोकादि के स्पष्टीकरणार्थ प्राकृत ( जैन महाराष्ट्री ) में सविस्तर कथाएँ लिखी हैं यही इस टीकाग्रंथ की विशेषता है। उत्तराध्ययन में ‘काविलियं’ नाम के ८ वें अध्याय पर टीका लिखते समय देवेन्द्रने प्रथम कपिलमुनि की कथा दी है। लोभ का अमर्याद स्वरूप देखकर कपिल संसारविरक्त मुनि कैसे बना, यह वृत्तान्त देवेन्द्रसूरि ने आकर्षक शैली में लिखा है।

‘उत्तराध्ययणसूत्रं’ ( उत्तराध्ययनसूत्रम् ) या जैनागमातील मूलसूत्रावर देवेन्द्राचार्य किंवा ( नेमिचन्द्रसूरि ) यांनी ई. स. १०७३ मध्ये सुखबोधा नावाची संस्कृतात टीका लिहून पूर्ण केली. या टीकेचे वैशिष्ट्य म्हणजे श्लोकादींच्या स्पष्टीकरणार्थ त्यांनी प्राकृत ( जैन महाराष्ट्री ) भाषेत लिहिलेल्या सविस्तर कथा होत. उत्तराध्ययनातील ‘काविलियं’ या ८ व्या अध्यायावर टीका लिहिताना देवेन्द्रांनी प्रथम कपिलाची कथा दिली आहे. येथे लोभाचे अमर्याद स्वरूप पाहून तो संसार विरक्त मुनि कसा बनला, हे मोठ्या आकर्षक पद्धतीने सांगितले आहे. )

२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसुंबी नाम नयरी । जियंसत्ते  
 राया । कासवो बभणो चोद्सविज्जाठाणपारगी, राइणा बहुमओ ।  
 वित्ती से उवकप्पिया । तस्स जसा नाम भारिया । तेसि पुत्तो  
 कविलो नाम । कासवो तम्मि कविले खुडुलए चेव कालगओ ।

ताहे तस्मि मए तं पयं राइणा अन्नस्स मय्यगस्स दिन्नं ।  
 सो य आसेण छत्तेण य धरिज्जमाणेण वच्चइ । तं दट्ठूण जसा  
 पुरुत्ता । कविलेण पुच्छिया । ताए सिट्ठं जहा—‘पिया ते एवंवि-  
 हाए इड्डीए निग्गच्छियाइओ, जेण सो विज्जासंपन्नो ।’ सो भणइ-  
 ‘अहं पि अहिज्जामि ।’ सा भणइ—‘इह तुमं मच्छरेण न कोइ  
 सिक्खावेइ ।’ वच्च सावत्थीए नयरीए तत्थ पियमित्तो इंददत्तो  
 नाम माहणो सो तुमं सिक्खावेही ।’

सो गओ सावत्थि । पत्तो य तस्समीवं निवडिओ चलणेसु ।  
 पुच्छिओ—‘कओ सि तुमं ।’ तेण जहावत्तं कहियं विणयपुव्वयं च  
 पंजलिउडेण भणियं—‘भयवं, अहं विज्जत्थी तुम्हं तायनिव्विसेसाणं  
 पायमूलं आगओ । ता करेह मे विज्जाए अज्झावणेण पसाओ ।’  
 उवज्जाएण वि पुत्तयसिणेहं उव्वहंतेण भणियं—‘वच्छ, जुत्तो ते  
 विज्जागहणज्जमो ।’ विज्जाविहीणो पुरिसो पसुणो निव्विसेसो  
 होइ । इहपरलोए य विज्जा कल्लाणहेऊ । ता अहिज्जसु विज्जं ।  
 साहीणाणि य तुहं सव्वाणि विज्जासाहणाणि । परं भोयणं मम  
 घरे निप्परिग्गहत्तणओ नत्थि । तमंतरेण य न संपज्जए पढणं ।’  
 तेण भणियं—‘भिक्षामित्तेण वि संपज्जइ भोयणं ।’ उवज्जाएण  
 भणियं—‘न भिक्षावित्तीहिं पढिउं सविकज्जए । ता आगच्छ  
 पत्थेमो कंचि इव्वं तुहं भोयणनिमित्तं ।’

कविलमुणिचरियं • \* • \* • \* \* ३

गया ते दो वि तन्निवासिणो सालिभद्दइब्भस्स सयासं ।  
पुच्छिओ इब्भेण <sup>पयोउओ</sup>पओयण । उवज्झाएण भणियं—‘एस मे मित्तस्स  
पुत्तो कोसंबीओ विज्जत्थी आगओ । तुज्झ भोयणनिस्साए अहिज्जइ  
विज्जं मम सयासे । तुज्झ महंतं पुण्णं विज्जोवगाहकरणेण ।’सह-  
रिसं च पडिवण्णं तेण ।

दाढेण सो तत्थ जिमिउं जिमिउं अहिज्जइ । दासचेडी य तस्स  
परिवेसेइ । सो य सभावेण हसणसीलो । विगारवहुलयाए जोव्व-  
णस्स, दुज्जयत्तणओ <sup>आवन्ना</sup>कामस्स तीए अणुरत्तो सावि य तम्मि ।

अन्नया दासीणं महो आगओ । सा य उव्विग्गा अच्छइ ।  
तेण पुच्छिया — ‘कओ ते अरई ।’ तीए भण्णइ — ‘दासीमहो उव-  
ट्ठिओ । मम <sup>पुत्त</sup>पुल्लणं मोल्लं नत्थि । सहीण मज्जे विगुप्पिस्सं ।’  
ताहे सो अधिइं पगओ । <sup>तीए</sup>भण्णइ ‘मा अधिइं करेहि । एत्थ  
धणो नाम सेट्ठी । <sup>परायणी</sup>अप्पहाए चैव जो णं <sup>पदमं</sup>पदमं वद्धावेहि सो तस्स  
दो सुवण्णमासए देइ । तत्थ तुमं <sup>गंतूण</sup>गंतूण वद्धावेहि । ‘आमं’ ति  
तेण भणिए तीए लोभेण अन्नो गच्छिहि त्ति अइप्पभाए पेसिओ ।  
वच्चंते य आरक्खियपुरिसेहिं गहिओ वद्धो य ।

तओ पभाए पसेणइस्स सो उवणीओ । <sup>राइणा</sup>राइणा पुच्छिओ ।  
तेण सव्भावो कहिओ । राइणा भणियं—‘जं मग्गसि तं देमि ।’ सो  
भणइ—‘चित्तिउं मग्गामि । राइणा ‘तह’ त्ति भणिए असोगवणि-  
याए चित्तेउं आरद्धो । ‘दोहिं मासेहिं वत्थाभरणाणि न भविस्संति,  
ता सुवण्णसयं मग्गामि । तेण वि भवणजाणवाहणाइं न भविस्संति,  
ता सहस्सं मग्गामि ।’ इमेण वि डिंभरूवाणं परिणयणाइवओ न  
पूरेइ ता लक्खं मग्गामि । एसो वि सुहिसयणबंधुसम्माणदीणा—

४

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावलो

णाहाइदाणविसिट्ठभोगोवभोगाण न पज्जत्तो, ता कोडिं कोडिसयं कोडिसहस्सं वा मग्गामि ।' एवमाइ चित्तं तो सुहकम्मोदएण तक्ख-  
णमेव सुहपरिणामं उवगओ संवेगं आवन्नो लग्गो परिभाविउं -  
'अहो लोभस्स विलसियं । दोण्ह सुवण्णमासाण कज्जेण आगओ  
लाभं उवट्ठियं दट्ठूण कोडीहिं पि न उवरमइ मणीरहो । अन्नं च,  
विज्जापढणत्थं विदेसं आगओ जाव ताव अवहीरिऊण जणणिं  
अवगणिऊण उवज्झायहियउवएसं अवमणिऊण कुलं एईए इयर-  
रमणीए जाणमाणो वि मोहिओ । ता अलं सुवण्णेण, अलं विसय-  
संगेण, अलं संसारपडिवंधेण ।' एवमाइ भावेमाणो जाइं सरिऊण  
जाओ सयंबुद्धो । सयमेव लोयं काऊण देवयाविदिन्नगहियायार-  
भंडगो आगओ राइसगासं । राइणा भणियं-'किं चित्तियं ।' तेण  
य निययमणोरहवित्थरो कहिओ । पढियं च-

'जहा लाभो तहा लोभो लाभो लोभो पवड्डइ ।

दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठिये ॥'

राया पढ्डुमणो भणइ-कोडिं पि देमि, गिण्हसु अज्जो ।'  
इयरेण भणियं-पज्जत्तं अत्थेण । परिचत्तो मए घरवासो ।' तओ  
धम्मलाभिऊण रायाणं निग्गओ नयरीओ । छम्मासाणंतरं च  
उप्पन्नं से केवलं नाणं ।

( उत्तराध्ययनसूत्र-सुखबोधा टीका. पा. १२३-१२५ )

\*●\*



## २

## कालगायरिकथा



( ख्यातनाम जैनाचार्य श्रीकालकसूरि का जीवनकाल वीर संवत् ४०० से ४६५ तक ( ई. स. पू. १२६ से ६१ तक ) माना जाता है । इस महान् आचार्य की बोधपरक जीवन-कथा अनेक जैनाचार्यों ने प्राकृत, संस्कृत तथा गुजराती भाषाओं में रोचक शैली में गद्य तथा पद्य में लिखी है । सर्व-प्राचीन कथा श्रीजिनदास महत्तर विरचित निशीषचूर्णि तथा आवदक-चूर्णि ( संवत् ७३३ ) में मिलती है । श्री भद्रबाहुस्वामि, मलधारी हेमचन्द्रसूरि, श्री भद्रेश्वर, श्री धर्मघोषसूरि, अज्ञातसूरि, श्री विनयचन्द्रसूरि आदि ने प्राकृत में, देवेन्द्रसूरि, श्री रामभद्र, महेश्वरसूरि, आदि ने संस्कृत में तथा श्री रामचन्द्रसूरि और, श्री गुणरत्नसूरि ने प्राचीन गुजराती में कालक-कथा लिखी है । उन विविध कथाओं के आधार से विद्यार्थियों के लिए मैंने सुलभ प्राकृत ( जैन महाराष्ट्री ) में इस कथा की रचना की है । श्री साराभाई मणिलाल नवाब ( अहमदाबाद ) ने श्री कालक-कथा-संग्रह के दो भाग ई. स. १९४९ में प्रकाशित किये हैं । पहले भाग में उन्होंने अंग्रेजी में विविध कथाओं का तौलनिक विवेचन किया है और इसमें प्रसंगानुरूप प्राचीन सुन्दर सुन्दर चित्र भी दिये हैं । दूसरे भाग में प्राकृत संस्कृत और गुजराती भाषा में लिखी गयी विविध कथाएँ संगृहीत की हैं । इस कथा

६

\*

\*

\*

\*

\*

## पाययकुसुमावली

में राजपुत्र कालक ने विरागी बनकर मुनिदीक्षा ली, फिर गृहस्थी वेष धारण कर शकराजा की मदत से भगिनी सरस्वती साध्वीकी दुष्ट गर्दभिल्ल राजा के अंतःपुर से छुटका की और फिर संयम धारण किया यह रोचक वृत्तान्त है। पर्युषणपर्व के दिन में बदल और शकराजा के भारत में प्रवेश का ऐतिहासिक वृत्तान्त भी हमें यहाँ मिलता है।

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री कालसूरी यांचा जीवनकाल वीर संवत् ४०० ते ४६५ पर्यंत ( ई. स. पूर्व १२६ से ६१ मानला जातो ) अनेक जैनाचार्यांनी या थोर कालकाचार्यांची कथा प्राकृत, संस्कृत व गुजरातीमध्ये गद्य आणि पद्यात आकर्षक शैलीमध्ये लिहिली आहे. त्यांची सर्वात प्रथम कथा श्री. जिनदासमहत्तर विरचित निशीथचूर्णी आणि आवश्यकचूर्णीमध्ये ( संवत् ७३३ ) मिळते. श्री. भद्रबाहुस्वामी, मलधारी श्री. हेमचन्द्रसूरी, श्री. भद्रेश्वर, श्री. धर्मघोषसूरी, श्री. अज्ञातसूरी, श्री. विनयचंद्रसूरी, इत्यादींनी प्राकृतात, श्री देवेन्द्रसूरी, श्री. रामभद्रसूरी इत्यादींनी संस्कृतात. तसेच श्री रामचंद्रसूरी आणि श्री गुणरत्नसूरींनी प्राचीन गुजरातीत कालक कथा लिहिली. या विविध कथांच्या आधाराने विद्यार्थ्यांकरिता मी सुलभ प्राकृतात ( जैन महाराष्ट्री ) मध्ये ही कथा पुनः लिहिली आहे. श्री. साराभाई मणिलाल नबाब ( अहमदाबाद ) यांनी श्री कालक-कथा संग्रहाचे दोन भाग ई. स. १९४९ मध्ये प्रकाशित केले, त्यांनी पहिल्या भागात इंग्रजीमध्ये विविध कथांचे तालनिक विवेचन केले असून प्रसंगानुरूप त्यात प्राचीन सुंदर चित्रेही दिली आहेत. दुसऱ्या भागात प्राकृत, संस्कृत वा गुजरातीत विविध कथांचा संग्रह केला आहे. या कथेत कालकराजपुत्रानें विरागी बनून मुनिदीक्षा घेतली व पुनः गृहस्थी वेष घेऊन शकराजाच्या मदतीने आपली भगिनी साध्वी सरस्वतीची दुष्ट गर्दभिल्ल राजाच्या अंतःपुरातून सुटका केली आणि पुनः संयमात स्थिर झाले. हा वृत्तांत दिला आहे. पर्युषणपर्व दिवसाचा बदल आणि शकराजाचा भारतात प्रवेश हा ऐतिहासिक वृत्तांतही आपणास येथे मिळतो. )

## कालगायरियकहा

\* \* \* \* \*

७

अत्थित्थ भारहे वासे धारावासं नयरं अमरावईसरिसं ।  
तत्थ आसि सिंहु व्व वेरिसिंहो नरेसरो । सुरसुंदरि त्ति से गुण-  
सीलकलिया रूववई देवी । तीसे कुच्छीए सुत्तीए मोत्तियं व  
कालगो नाम महागुणो कुमारो जाओ । नामेण गुणेहि य तस्स  
सरस्सई नाम बहिणी ।

अह अन्नया कुमरो कीलाए बहिरुज्जाणे गओ । तत्थ चूय-  
पायवस्स हेट्ठा तेण दिट्ठो गुणंधरो नाम आयरिओ । विणएण पाए  
वंदिकुण सो गुरुदेसणं सणइ ।

‘अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।  
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥’

श्रुत्वा इच्छां धम्मदेसणं सोऊण कुमरो पडिबुद्धो सरस्सईइ  
संजुत्तो पव्वइओ य । अइरेण सुयणाणं पडिय सो गीयत्थो जाओ ।  
‘जोगो’ त्ति कलिऊण सूरिवरेण सो सूरिपए ठिओ ।

गामाणुगामं भव्वाणं पडिबोहणं कुणंतो बहुसीसपरीवारो  
कालगसूरो उज्जयणिं पत्तो । चारुचारित्तभूषणा अज्जिया सरस्सई  
वि साहुणीसमं तत्थ गया ।

तहिं महावलिट्ठो इत्थीलोलो गद्दभिल्लो राया । तेण सा  
रूवसुंदरी दिट्ठा ।

‘जइ हंत इमा वि वयं करेइ परिचत्तरइसुहा बाला ।  
तो विहलपुरिसयारो किह अज्ज वि वम्हहो जियइ ॥’

त्ति चित्तिऊण कामग्गहगहिल्लेण तेण दुट्ठेण-

८ \* \* \* \* \* पाययकुसुमावली

‘हा सुगुरु, हा सहोयर, हा पवयणनाह, कालय मुणिद ।  
चरणधणं हीरंतं मह रक्ख रक्ख अणज्जनरवड्ढो ॥’

इच्छाइ विलवमाणी अणिच्छमाणी य सा साहुणी बला धेतूण  
ओरोहे छद्द ।

अह कालगसूरी वि हु कह वि एयं वड्ढयरं नाऊण नरिंदपासे  
गंतूण कोमलगिराहिं भणइ—

‘सारयाण् चंदो इंदो जह सुरगणाण् नरनाह ।  
तह लोयाण् पमाण् तं चिय ता कह इमं कुणसि ॥  
अन्नाण वि परजुवईण राय-संगो दुहवहो चेव ।  
जो लिंगिणीण संगो सो पुण ग्रहयं महापावं ॥  
बहुनूरवरधूयासंगमे वि निव गओसि न परिओसं ।  
निरवड्ढो य रिसीण धम्मं वड्ढूति न मुसंति ॥’

तो चित्तिऊण् इमाइ मुंच सयमेव मह बहिणि ।’ इच्छाइ  
जुत्तिजुत्तं सूरिणा नराहिवो भणिओ वि न मुयइ साहुणि ।’ जहा  
महोसही खीणाउसं तहा सूरिणो संघस्स मंतीणं च संबोहणं सिच्छं  
जायं ) तओ रुद्धो कालगसूरी पईणि करेइ—‘पुढवोए वड्ढमूल पि  
गद्दभिल्लनिवक्ख पवणी व्वु जइ न उम्मूलेमि, तो पवयणसंजमो-  
वग्घायगाण् तमुवेक्खाण य गइ गच्छामि ।’ ताहे कइयवेण कयउ-  
म्मत्तिगवेसो कालगज्जो हिंडइ नगरमज्जे असंबद्धपलवंतो—

‘जइ गद्दभिल्लो राया तो किमतः परं ।

जइ वा अंतोउरं रम्मं तो किमः परं ॥

## कालगायरिकहा

\*

\*

\*

\*

\*

१९

विसओ जइ वा रम्मो, तो किमतः परं ।

सुणिवेदा पुरी जइ तो किमतः परं ।

जइ वा जणो सुवेसो तो किमतः परं ।

जइ वा हिंडामि भिक्खं तो किमतः परं ।

जइ सुण्णगिहे सुमिणं करेमि तो किमतः परं ॥'

अह पारसकुलं गंतूण सूरी इवकसाहिणा ( मंतिणा ) सह  
साहाणुसाहिणो ( राइणो ) सहाइ वच्चइ सव्वस्स सुहइ बुल्लइ ।  
एवं सो वयणरसेण रायप्पमहलोयं रंजइ । विज्जाइगुणेहि गुरु  
त्ति सगराइणा पडिवन्ना । तत्तो सुरिवयणाओ सयलसगुसाहिणो  
दुट्ठगदभिल्लेण सह जुज्झिउं निग्गया । अह तेसु चलंतेसु गिरिणो  
धुज्जंति, धरणी थरहरइ, धूलीहि च झंपिओ सूरु । कमेण सिधु-  
नइं उत्तरिऊण ते सुरदुमंगले पत्ता ।

अह पाउसम्मि पत्ते से ठिया तत्थ १ वट्टंते सरयसमए लाडा-  
रायाणो जे गदभिल्लेण अवमाणिया ते मेल्लेउं अन्ने य तओ  
उज्जेणि रोहंति ।

एगया रयणीइ सुन्नमणं सूरि पासित्ता सासणदेवया क्षणइ-  
'मुणिवर, दुक्खं मा धरसु नियहियए । सीलेण सीयासरिसं सर-  
स्सइ जाण, तस्सीलपभावेण तुह जयपत्तं होहि' त्ति अदंसणं पत्ता

अह प्रेमिं सुन्नं देवूणे सगाइराईहि सूरु पुट्ठो । तो साहिय  
गदभीविज्जो सूरु कहेइ-अज्ज अट्ठमी दिणो । राया गदभिल्लो  
विहियउववसो गदभीविज्जं साहइ । ताहे सा गदभी महंतेण सदेण

१०

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

णादइ । ति॒रि॒ओ मणु॒ओं वा जो प॒रब॒लि॒च्चो स॒द् सु॒णइ स स॒व्वो  
रु॒हिरं वम॑ंतो भयविहलो नटुसन्नो धरणियले निवडइ ।’

तओ सूरिणो आएसेण जाव सा गद्भी मुहं उप्पाडिय सद्  
न करेइ ताव जोहेहिं अप्पणो बाणेहिं तोए मुहं पूरियं । हयसत्ती  
सा गद्भिल्लुवरिं हग्गिउं मुत्तेउं च लत्ताहि य हंतूण गया ।

जोहेहिं पुरी गहिया । गद्भो व्व बंधिउं आणिओ गद्भिल्लो ।  
सूरिणा तज्जिओ — ‘रे दुरायार, भवंतरे पावतरुपुप्फं पाविहिसि  
अओ य नरयफलं ।’ खमिऊण य गद्भिल्लो उज्जेणीओ निद्धा—  
डिओ । सगराया रज्जे ठविओ भणिओ य—‘सगराय, नाई पया—  
वच्छलो होहि । धम्मेण रज्जं पालेहि । धम्मेण रज्जं अमरं होही  
अधम्मेण य विणस्सहि त्ति मा विसुमरसु ।’

अह सूरिणा अप्पा संजमे ठविओ । सा वि भइणी सरस्सई  
पायच्छित्तेण संजमे सुज्झविया ।

( विविहकालग-कहाहितो संगहिऊण )

३

## विवागदारुणो मायाचारो

•

ई. स. ८ वें शतक में हरिभद्रसूरि नाम के एक महान् जैनाचार्य हुए । पहले वे बड़े विद्वान् तथा दृढ़ वैदिकधर्मी ब्राह्मण थे । चित्रकूट में जितारि राजा के आश्रय में वे पुरोहित थे । उन्मत्त हाथी के आक्रमण से बचने के लिए उन्होंने जिनमंदिर का आश्रय लिया और याकिनी महत्तरा के सदुपदेश से जैनधर्म अंगीकार किया । वे बड़े आचार्य बन गये । उन्होंने संस्कृत और प्राकृत में विपुल ग्रंथ-रचना की है । समराइच्चकहा' (समरादित्यकथा) नाम की उनकी प्राकृत में प्रदीर्घ और बोधप्रद धर्मकथा है । उस ग्रंथ के दूसरे भव में मायाकपाय का स्वरूप दिखाने के लिए उन्होंने अमरगुप्तमुनि की उपकथा कही है । यहाँ अमरगुप्त का पहला सोमानामक रुद्रदेव की पत्नी का भव दिया है । विषयासक्त रुद्रदेव ने अपने सुखोपभोग में व्यत्यय देखकर मायाचार से सम्यक्त्वी सोमा को कैसे मारा, यह वृत्तांत है ।

इ. स. च्या ८ व्या शतकात हरिभद्रसूरी नावाचे एक थोर जैनाचार्य होऊन गेले. प्रथम ते मोठे विद्वान् कट्टर वैदिकधर्मी ब्राह्मण होते. ते चित्रकूटात जितारीराजाच्या पदरी पुरोहित होते. उन्मत्त हत्ती पासून बचावण्याकरिता त्यांनी जिनमंदिराचा आश्रय घेतला आणि याकिनी महत्तराच्या सदुपदेशाने जैनधर्म स्वीकारला, ते मोठे आचार्य बनले, त्यांनी संस्कृत व

१२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

प्राकृतात विपुल ग्रंथरचना केली आहे त्यांची' समराइच्चकहा, ( समरादित्यकथा ) नावाची प्राकृतात प्रदीर्घ अशी बोधपर धर्मकथा आहे. त्यातील दुसऱ्या भवात मायाकपायाचे स्वरूप बाळविण्याकरिता अमरगुप्ताची उपकथा सांगितली आहे. येथे अमरगुप्ताचा पहिला सोमानावाच्या रुद्रदेवाच्या पत्नीचा भव दिला आहे, विषयलोलुपी रुद्रदेवाने विषयसुखात अडथळा येत असल्यामुळे सम्यक्स्त्री सोमाला मायाचाराने कसे ठार केले, ही हकीकत आहे. )

अत्थि इहेव विजए चंपावासं नाम नयरं । तत्थाईयसमयम्मि सुधणू नाम गाहावई होत्था । तस्स घरिणी धारिणी नाम । ताण य सोमाभिहाणा सुया आसि । संपत्तजोव्वणा य दिन्ना तन्नयरनिवासिणो नंदसत्थवाहपुत्तस्स रुद्रदेवस्स । कओ य णेण विवाहो । ते जहाणुरूवं विसयसुहमणुहवंति ।

एगया तत्थ अहाकप्पविहारेण विहरमाणा विविहतवखवियदेहा सुयरयणपसाहिया रूवि व्व सासगदेवया समागया बालचंदा नाम गणिणी । दिट्ठा य सा तीए समुरकुलाओ नाइकुलमहिगच्छंतीए विहारनिग्गमणपएसे । तं च दट्ठूण तीए समुप्पन्नो पमोओ, वियसियं लोयणेहिं, पणट्ठं पावेण, ऊससियमंगेहिं, वियंभियं धम्मचित्तेणं । तओ तीए नाइदूरओ चेव विणयरइयकरयलंजलीए सबहुमाणमभिवंदिया भयवई । तीए वि य दिन्नो सयलसुहसस्सबीयभूओ धम्मलाभो । जायाओ य तीए तं पइ अईव भत्तिपीईओ । पुच्छिओ तीए भयवईए पडिस्सओ । साहिओ साहुणीहिं । तओ सा जहोचिएण विहिणा पच्चुवासिउं पवत्ता । साहिओ तिस्सा भयवईए कम्मवणदावाणलो दुक्खसेलवज्जासणी सिवसुहफलकप्पायवो वीयरगदेसिओ धम्मो । तओ कम्मक्खओवसमभावओ



**विवागदारुणो मायाचारो**

\*

\*

\*

\*

१३

पत्तं सम्मतं, भाविओ जिणदेसिओ धम्मो । विरत्तं च तीए भव-  
चारयाओ चित्तं ।

तओ सो रुद्धदेवो कम्मदोसेण पओसं काउमारद्धो । भणियं च  
तेण-परिच्चय एवं विसयसुहविग्घकारिणं धम्मं ।' तओ सोमाए  
भणियं-‘अलं विसयसुहेहिं, अइचंचला जीवलोयठिई, दारुणो य  
विवागो विसयपमायस्स ।’ तेण भणियं-वियारिया तुमं, मा दिट्ठं  
परिच्चइय अदिट्ठे रइं करेहि ।’ तीए भणियं-‘किमेत्थ दिट्ठं नाम ।  
पसुगणसाहारणा इमे विसया । पच्चक्खोवलब्भमाणसुहफलो कहं  
अदिट्ठो धम्मा त्ति । तओ सो एवमहिलप्पमाणो अहिययरं पओ-  
समावन्नो । परिचत्तो य तेण तीए सह संभोगो । वरिया य नाग -  
देवाभिहाणस्स सत्थवाहस्स धूया नागसिरी नाम कन्नगा । न  
संपाइया तावबहुमाणेणं नागदेवसत्थवाहेण । रुद्धदेवेण चित्तियं-  
‘न एयाए जीवमाणीए अहं भारियं लहामि, ता वावाएमि एयं ।’

तओ मायाचरिएणं रुद्धदेवेणं कहिंचि घडगयमासीविसं काऊण  
संठविओ एगदेसे घडओ । अइक्कंते पओससमए संपत्ते य कामिणि  
जणसमागमकाले भणिया सा तेण-‘उवणेहि मे इमाओ नवघडाओ  
कुसुममालं’ ति । तओ सा तस्स मायाचरियमणवबुज्झमाणा गया  
घडसमीवं । अदणीयं तस्स दुवारघट्टणं धरणिमाऊलिंगं । तओ  
हत्थं छोढूण गहिओ भुयंगं । डक्का सा तेण । तओ तं ससंभमं’  
उज्जाऊण सज्जसभायवेविरंगी समल्लीणा तस्स समीवं । ‘डक्क  
भुयंगमेणं’ ति सिट्ठं रुद्धदेवस्स । नियडीपहाणओ य आउलीहूओ  
रुद्धदेवो । पारद्धो तेण निरत्थओ चेव क.लाहला ।

## पाययकुसुमावली

\* \* \* \* \*

१४

एत्थंतरम्मि बीइयं सीए अंगेहिं, वियलियं संघीहिं, उव्वत्तियं  
पिव हियएण, भमियं पिव पासायंतरेण, परिवत्तियं पिव पुह्वीए ।  
अवसा सा निवडिया धरणिवट्ठे । अओ परमणाचिवखणीयमवत्थं-  
तरं पाविऊण पुव्वसम्मत्ताणुभावओ चइऊण देहं सोहम्मकप्पे  
लीलावयंसए वरविमाणे पलिओवमट्ठिई देवत्ताए उववन्ना सा ।  
तत्थ य सो देवो पवरच्छरापरिगओ दिव्वे भोए उवभुंजइ ।

तओ रुद्धदेवो वि तं नागदत्तसत्थवाहधूयं परिणीय तीए सद्धि  
ब्रह्माणुरूवे भोए उवभुंजइ । सो कालमासे कालं काऊण रयणप्प-  
भाए पुह्वीए खट्ठक्खडाभिहाणे नरए पलिओवमाऊ चैव नारगो  
उववन्नो ।

( सिरिहरिभट्टसूरिविरइया समराइच्चकहा-त्रीओ भवो )

( पा. ८३-८४ )

४

## कमलाङ्ग कदमे संभवन्ति

•

( ई. स. ५ या ६ शतक में 'वसुदेवहिंडी' स प्राचीन प्राकृत कथा-साहित्य की रचना हुई । इसमें दो भाग हैं । पहला भाग श्री संघवासगणि ने और दूसरा भाग श्रीधर्मसेनगणि ने लिखा है । इनमें त्रिविध दृष्टांत कथाएँ तथा धर्म-कथाएँ हैं । यहाँ जंबूनामक श्रीमान् बणिक्पुत्र अपने नव-विवाहित बत्तीस स्त्रियों के साथ विरागी बनने के लिए बाद कर रहा था । उसी समय उसका धन लूटने के लिए आए हुए कुप्रसिद्ध डाकू प्रभव ने उससे कहा, इन बहनों के साथ सुखोपभोग भोगते गृहस्थाश्रम का पालन करो । तब संसार में वासनावश मनुष्य अज्ञान से कैसा अघोर--पाप कर सकता है इसका जंबूकुमार इस कथा द्वारा स्पष्टीकरण कर रहा है ।

इ. स. ५ व्या किंवा ६ व्या शतकात 'वसुदेवहिंडी' या प्राचीन प्राकृत कथासाहित्याची रचना झाली . याचे दोन भाग असून पहिला भाग श्रीसंघ-वासगणींनी व दुसरा श्रीधर्मसेनगणींनी लिहिला. यात अनेक दृष्टांतकथा व धर्मकथा आहेत . येथे जंबू नावाचा श्रीमान् बणिकपुत्र आपल्या नवविवाहित बत्तीस स्त्रियांशी विरागी बनण्याबद्दल बाद घालीत आहे, त्याच वेळी त्याची संपत्ती लुटण्याकरिता आलेल्या कुप्रसिद्ध प्रभव चोराने ही 'त्यास संसारात

१६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

राहून या बहिणीसह सुखोपभोग भोगत रहा' असे सांगितले तेव्हा संसारात वासनेच्या आधीन गेल्यामुळे माणूस आज्ञानाने 'कस-कसे अधोर पातक करतो' ते या कवेच्या द्वारा जंबूकुमार समजावून देत आहे. )

महुराए नयरीए कुबेरसेणा गणिया । पढमगढभदोहलखेइया  
सा जणणीए तिगिच्छगस्स दंसिया । तेण भणिया—जमलगढभा-  
दोसेण एईसे परिबाहा । नत्थि कोइ बाहिदोसो दीसई ।'

एवमुवलद्वत्थाय जणणीए भणिया —'पुत्ति, पसवणकालसमए  
मा णे सरीरपीडा भवेज्जा । गालणोवायं गवेसामि । तओ निरा-  
मया भविस्ससि । परिभोगबाहाओ य न होहिइ । गणियाण य  
किं पुत्तमंडेहि ।

तीए न इच्छियं । भणइ—'जायपरिच्चायं करिस्सं ।' तहा-  
णुमए य समए पसूया दारगं दारिगं च । जणणीए भणिया  
'उज्झिज्जंतु तीए भणियं—'दसरायं ताव पुरिज्जउ ।' ।

तओ य णाए दुवे मुद्दाओ कारियाओ, नामंक्रियाओ कुबेर-  
दत्तो कुबेरदत्ता य । अईए दसराईए डहरिकासु नावासु सुवण्ण-  
रयणतूरियासु छोढूण जउणानइं पवाहियाणि । कुब्भंताणि य  
भवियव्वयाए सोरियनयरे पच्चूसे दोहिं इब्भदारएहिं दिट्ठाणि ।  
धरियाउ नावाउ । गहिओ एगेण दारगो, इक्केण दारिया । सध-  
णाइं ति तुट्ठेहिं सयाणि गिहाणि नीयाणि त्ति ।

कमेण परिवड्डियाणि पत्तजोव्वणाणि । जुत्तसंबंधो' त्ति  
कुबेरदत्ता कुबेरदत्तस्स दिन्ना । कल्लाणदिवसेसु य वट्टमाणेसु बहु-  
सहीहिं वरेण सह जूयं पओजियं । नाममुद्दा य कुबेरदत्तहत्थाओ

कमलाइं कद्दमे संभवन्ति \* \* \* \* \* १७

गहेऊण कुबेरदत्ताए हत्थे दिन्ना । तीसे पेच्छमाणीए सरिसघडण-  
नामओ चिंता जाया 'केण कारणेण मन्ने नाममुद्दाकारसमया  
इमासि मुद्दाणं' । न य मे कुबेरदत्ते भत्तारचित्तं, न य अम्हं कोइ  
पुब्बज्जो एयनामो सुणिज्जइ । तं भवियव्वं एत्थ रहस्सेण' ति  
चित्तेऊण वरस्स हत्थे दो वि मुद्दाउ ठावियाओ ।

तस्स वि पस्समाणस्स तहेव चिंता समुप्पन्ना । सो बहूए  
मुद्दं अप्पेऊण माउसमीवं गओ । सा य णेण सबहसाविया पुच्छिया-  
तीए जहासुयं कहियं । तेण भणिया- 'अम्मो, अजुत्तं तुब्भेहि कयं'  
ति । सा भणइ- मोहिया मो, तं होउ पुत्त ! बहू हत्थग्गहणमेत्त-  
हूसिया । न एत्थ पावगं । अहं विसुज्जेहामि दारिगं सगिहं ।  
तव पुण दिसाजत्ताओ पडिनियत्तस्स विसिट्ठं संबंधं करिस्सं ।' एवं  
वोत्तूण कुबेरदत्ता सगिहं पेसिया ।

तीइ वि जणणी तहेव पुच्छिया, तीए जहावत्तं कहियं । सा  
तेण निव्वेएण समाणी पव्वाइया । पवत्तिणीए सह विहरइ । मुद्दा  
य णाए सारक्खिया पवत्तिणिवयणेण ।

विसुज्झमाणवरित्ताए ओहिनाणं समुप्पन्नं । आभोइओ य  
णाए कुबेरदत्तो कुबेरसेणाए गिहे वत्तमाणो । 'अहो ! अन्नाण-  
दोसु' ति चित्तेऊण तेसि संबोहनिमित्तं अज्जाहिं समं विहरमाणी  
महरं गया । कुबेरसेणाए गिहे वसहिं मग्गिऊण ठिया । तीए  
वंदिऊण भणिया 'भगवईओ, अहं केवलं जाईए गणिया, न उण  
समायारेण । जओ सपयं सुकुलबहु व्व एक्कपुरिसगामिणी हं । असं-  
क्रिया मह वसही । ता अच्छह मम अणुगहं काऊणं ति । ठियाओ

१८

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

य ताओ तत्थ । तीसे य दारगो बालो सा तं अभिक्खं साहुणी-  
समीवे निक्खिबवइ । तओ तेसिं खणं जाणिऊण अज्जा पडिबोह-  
निमित्तं दारगं परियंदेइ-

‘बोलिये, भायो सिं मे देवेरो सि मे पुत्तो सि मे ।

सवत्तिपुत्तो भत्तिज्जाओ सि पित्तिज्जो सि ॥ १ ॥

जस्स आसि पुत्तो सो वि मे भाया ।

भत्ता पिया पियामहो ससुरो पुत्तो वि ॥

जीसे गव्वभजो सि सा वि मे माया ।

सामू सवित्ती भाउज्जाया पियामही वहू ॥ ३ ॥

अं च तहाविहं परियंदणयं सोऊण कुबेरदत्तो वंदिऊणं पुच्छइ  
‘अज्जे, कह इमं च कस्स विरुद्धमसंबद्धकित्ठणं । उदाहु दारग-  
विणोयणत्थं अबुज्जमाणं भणियं ।’ एवं पुच्छिए अज्जा भणइ-  
‘सावग, सच्चं एयं तओ य णाए ओहिणा दिट्ठं तेसिं दोण्ह वि  
जणाणं सपच्चयं कहियं । मुदा य दंसिया ।

कुबेरदत्तो य तं सोऊण जायतिव्वसंवेंगो ‘अहो! अन्नाणेण  
अपदं कारिओ’ त्ति विभवं दारगस्स दाऊणं अज्जाए कयनमो-  
क्कारो ‘तुम्हेहिं मे कओ पडिबोहो, करिस्सं अत्तणो पत्थं’ ति तुरियं  
निगओ । साहुसमीवे गहियलिगाज्यारो अपरिवडियवेरगो तवो-  
वहाणेहिं विगिट्ठेहिं खवियदेहो गओ देवलोयं } कुबेरसेणा वि  
गहियगिहिवासजोगनियमा साणुक्कोसा डिया । अज्जा वि पव-  
त्तिणीसमीवं गया ।

( सिरिसंवदासगणि वायगविरइयावमुदेवहिंडी पा.-१-१०-१२ )

\*G\*

५

## कुलवहू

•

(श्री जयसिंहसूरि ने 'धर्मोपदेशमालाविवरण' नामक धर्म कथा ग्रंथ की रचना ई. स. ८५८ में की है। इसमें ९८ प्राकृत गाथाएँ हैं। उनमें निर्दिष्ट की गई कथाएँ विवरण में विस्तार से कही हैं। इसमें गद्य-पद्य मिश्रित अनेक उपदेशात्मक धर्मकथाएँ हैं। यहाँ जवानी के उन्माद से विचलित हुई कुलवधू को कर्तव्यतत्पर बना कर शीलपालन में कैसे स्थिर किया, यह कहा है।)

श्री. जयसिंहसूरीनी 'धर्मोपदेशमालाविवरण' या धर्मकथाग्रंथाची रचना इ. स. ५५८ मध्ये केली. यात मूळ ९८ प्राकृत गाथा असून गाथांमध्ये निर्दिष्ट केलेल्या कथा विवरणामध्ये विस्ताराने सांगितल्या आहेत. यात गद्य-पद्यमिश्रित उपदेशवजा अनेक धर्मकथा आहेत. येथे तारुण्यसुलभ उन्मादाने विचलित झालेल्या कुलवधूस कर्तव्यतत्पर बनवून शील पाळण्यात कसे स्थिर केले आहे, हे सांगितले आहे.)

पुंडवद्वणे नयरे एगो इब्भजुवाणओ संपुण्णजोव्वणं नियय-२  
जायं मोत्तूण गओ देसंतरं । समइक्कंताणि एक्कारस वासाणि ।

## २० \* \* \* \* \* पाययकुसुमावली

अन्नया सयललोगउम्माहयजणणे कुंसुमरयरैणुगम्भिणे वियं-  
भियदाहिणाणिले ससुच्छलियकलयले मणहरचच्चरिसद्दाणंदियतरु-  
णयणे पयट्टे महसमए सहियायणपरिवुडा गया बाहिरुज्जाणं वहू ।  
दिट्ठाणि सिणेहसारं चक्कवायमिहुणयाणि दीहियाए रमंताणि,  
अन्नत्थ य सारसमिहुणाणि । पुलइओ हंसओ हंसियमणुणितो । तओ  
कामकोवणयाए वसंतस्स, रम्मयाए काणणस्स, रागुक्कडयाए  
परियणस्स, अणेगभवव्भत्थयाए गामधम्माणं, विगारबहुलयाए  
जोव्वणस्स, चंचलयाए इंदियाणं, महावाही दिव पयडियमहादुक्खो  
वियंभिओ सव्वंगिओ विसमसरो । चित्तियं च णाए—‘बोलिणो तेण  
निच्चुडएण दिन्नो अवही, न संपत्तो, ता पवेसेमि जुवाणयं किंचि ।’  
भणिया एएण वइयरेण रहस्समंजूसियाभिहाणा चेडी । तीए  
भणियं—

एत्तियकालं परिरक्खिऊण मा सोलखंडणं कुणसु ।  
को गोपयम्मि बुडुइ जलहि तरिऊण वालो वि ।

वहूए भणियं—‘हले, संपयं न सक्कुणोमि अणंगवाणघायं, ता  
किमेत्थ बहुणा । पवेसेसु किं पि ।’

तीए भणियं—‘जइ एवं ता मा झुरसु करेमि भे  
समीहियं ।’

तओ साहिओ एस वुत्तंतो सासूए । तीए वि भत्तुणो । तेण  
वि तीए सह कवडकलहं काऊण भणिया वहू—‘वच्छे न एसा तव  
सासू घरपालणस्स जोग्गा, ता पडिवज्जसु सव्वं तुमं ।’

‘एवं’ ति पडिवज्जे निरुविया सव्वेसु गेहकायव्वेसु । तओ



कुलवहु

\*

\*

\*

\*

\*

२१

[रियणीए चरमजामे उवट्टिऊण तंदुलाइखंडणपीसणसोहणरंधणपरि-  
वेसणाईणि, अन्नाणि य अणेगाणि कायव्वाणि जहम्ममज्झमुत्तमाणि  
करेंतीए कुसुमाभरणवत्थतंबोलविलेवणविसिद्धाहाराइरहियाए कमेण  
पत्तो रयगोए पढमजामो । भुत्तं सीयललुक्खमणुच्चियं भोयणं ।  
अच्चंतखिन्ना पसुत्ता एसा ] एवमणुदिणं करेंतीए पणट्ठरूवलाय-  
णतंबोलविलेवणवम्महाए बोलिणो कोइ कालो ।

‘अवसरो’ त्ति काऊण भणिया दासचेडीए-‘किं आणेमि पुरिसं।

तीए भणियं ‘हले, मुद्धिया तुमं जा पुरिसं झायसि, मज्झं  
पुण भोयणे वि संदेहो ।’

कालंतरेण आगओ भत्तारो । कयं वद्धावणयं । तुट्ठा बहू सह  
गुरुयणेणं ति ।

एसो उवणओ-जहा तीए कायव्वासत्ताए अप्पा रक्खओ ।  
एवं साहुणा वि किरिया नाणाणुट्ठाणेणं ति ।

सुयदेविपसाएणं सुयाणुसारेण साहियं चरियं ।  
बहुयाए निमुणंतो अप्पाणं रक्खए पुरिसो ॥

(श्रीजयसिंहसूरिविरचितं धर्मोपदेशमालाविवरणं (पा.१८१-८२) )



६

## थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जा

•

( श्वेतांबर-जैनागम के अंग विभाग में 'नायाधम्मकहाओ' ( ज्ञाता-धर्मकथा: ) नाम का छठा ग्रंथ है । इस ग्रंथ में मेघकुमार, शैलक, भ. मल्ली, देवकी आदि के चरित्र दिये हैं । तथा कूर्मक, तुंबक चार वधूओं, आदि की रूपक कथाएँ भी दी हैं । यहाँ स्थापत्यापुत्र ने इस संसार में जरा, रोग मृत्यु अटल होने के कारण आत्म-तारण के लिए धर्म के सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है इस लिए २२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के चरणकमलों में भगवती दीक्षा स्वीकार की' यह बतलाया है ।

श्वेतांबर जैनागमाच्या अंगविभागात 'नायाधम्मकहाओ' (ज्ञाताधर्म कथा: ) नावाचा सहावा ग्रंथ आहे. या ग्रंथात मेघकुमार शैलक, भगवान्-मल्ली, देवकी, इत्यादींचे चरित्र असून कूर्मक तुंबक, चार सुनादि रूपक कथाही दिल्या आहेत. म्हातारपण, रोग, मृत्यू अनिवारणीय असल्या मुळे धर्माशिवाय आत्मतारण होणार नाही म्हणून स्थापत्या पुत्राने भगवान् अरि. ष्टनेमी तीर्थंकरच्या चरणापाशी भगवती दीक्षा घेतली, हे सांगितले आहे. )

## थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जा

\* \* \* \* २३

तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए विजयं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छिता थावच्चापुत्तं एवं वयासी-एमा णं तुमं देवाणुप्पिया, मुंडे भवित्ता पव्वयाहि । भुंजाहि णं देवाणुप्पिया, विउले माणुस्सए कामभोगे मम बाहुच्छायापरिग्गहि । देवाणुप्पियस्स जं किंचि आबाहं वा विबाहं वा उप्पाएइ तं सब्बं निवारेमि ।’

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-‘जइ णं देवाणुप्पिया, जीवियंतकर-णिज्जं मच्चुं निवारेसि जरं वा सरीररूवविणासणिं निवारेसि, तए णं अहं तव बाहुच्छायापरिग्गहि विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि ।’

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे थावच्चापुत्तं एवं वयासी-‘एए णं देवाणुप्पिया, दुरइक्कमणिज्जा नो खलु सक्का सुबलिण्णावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नन्नत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं ।’

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-‘जइ णं एए दुरइक्कमणिज्जा, नो खलु सक्का सुबलिण्णावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नन्नत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया, अण्णाणमिच्छत्तअविरइकसायसंचियस्स अत्तणो कम्मक्खयं करित्तए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंन्नियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता

२४

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

थावच्चापुत्तस्म निवखमणविहिं करित्तए आणवेइ । तए णं से कण्हे  
वासुदेवे थावच्चापुत्तं पुरओ काउं जेणेव अरहा भगवं अरिट्ठणेमी  
तेणेव उवागच्छइ । थावच्चापुत्तो भगवओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए  
आभरणं ओमुयइ ।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी हंसलक्खणेणं पडगसाडएणं  
आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ असूणि विणिमुंचमाणी एवं वयासी-  
जइयव्वं जाया, घडियव्वं जाया, परक्कमियव्वं जाया, अस्सि च  
णं अट्ठे नो पमाएयव्वं ।'

तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेणं सद्धिं सयमेव पंच-  
मुट्ठियं लोयं करेइ जाव पव्वएइ ।

(नायाधम्मकहाओ-पंचमं अज्झयणं संक्षिप्त करके)

●●●

७

## दमयंतीसयंवरो

•

( सोमप्रभाचार्य ने 'कुमारपालप्रतिबोध' नाम का ग्रंथ १२ वें शतक में लिखा था । इसमें पाँच प्रस्ताव हैं । ग्रंथ की भाषा मुख्यतः प्राकृत है । तो भी कुछ कथाएँ संस्कृत और अपभ्रंश में भी लिखी हैं । ग्रंथ गद्य-पद्यमिश्रित है । ख्यातनाम कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने विविध कथाएँ कहकर गुजरात के कुमारपालराजा को धर्मप्रवृत्त किया । यहाँ दमयंती स्वयंवर का वर्णन नाट्यमय और बहुत रोचक ढंग से किया है ।

सोमप्रभाचार्यानी कुमारपाल-प्रतिबोध' ग्रंथ १२ व्या शतकात लिहिला. यात पाच प्रस्ताव आहेत. ग्रंथ मुख्यतः प्राकृतात असला तरी काही कथा संस्कृत व अपभ्रंश भाषेत ही लिहिल्या आहेत. ग्रंथ गद्यपद्यमिश्रित आहे. सुप्रसिद्ध कलिकालसर्वज्ञ हेमचंद्राचार्यानी या निरनिराळ्या कथा सांगून गुजरातच्या कुमारपालराजाला धर्मप्रवृत्त बनविले. येथे दमयंती स्वयं-वराचे नाट्यमय सुंदर वर्णन दिले आहे. )

२६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावलो

अत्थि इह भारहखिते कोसलदेसम्मि कोसलानयरी । तत्थ  
इक्खागुकुलुप्पन्नो निरुवमनयचायविककमजुत्तो निसहो नाम निवो ।  
तस्स सुंदरीदेवीकुक्खिसंभूया जणमणाणंदे दुवे नंदणा नलो  
कूबरो य ।

इओ य विदव्भदेसमंडणं कुंडिणं नयरं । तत्थ अरिकरिजूह-  
सरहो भीमरहो राया । तस्स सयलतेउरतरुप्फं पुप्फदंती देवी ।  
ताणं विसयसुहमणुहवंताण समुप्पन्ना सयलतइलोककालंकारभूया  
धूया ।

तीए तिलओ जाओ सहजो भालम्मि तरणिपडिबिबं ।  
सप्पुरिसस्स व वच्छत्थलम्मि सिरिवच्छवररयणं ॥

जणणीगव्वभगयाए इमीए मए सव्वे वेरिणो दमियेत्ति  
पिउणा कयं तीए दमयंति त्ति त्ताम् । सियपक्खचंदलेह व्व सव्व-  
जणनयणाणंदिणी पत्ता सा बुद्धि समए समप्पिया कलोवज्झायस्स ।

आयसे पडिबिबं व बुद्धिजुत्ताइ तीइ सयलकलाओ ।  
संकंताओ जाओ य सक्खिमत्तं उवज्झाओ ॥

पत्ता य सा जुव्वणं । तं दट्ठूण चित्तिं जणणीजणएहि-  
‘एसा असरिसरूवा, विहिणो विन्नाणपगरिसो य । ता नत्थि इमीए  
समाणरूवो वरो । अत्थि वा तह्वि सो न नज्जइ । अओ सयंवरं  
काउं जुत्तो ।’

तओ पेसिऊण दूए हक्कारिया रायाणो रायपुत्ता य । आगया  
गयतुरयरहपाइक्कपरियरिया ते । नलो वि निरुवमसत्तो पत्तो

दमयंतीसयंवरो

\*

\*

\*

\*

\*

२७

तत्थ भीमनिवइणा कयसम्माणा ठिया ते पवरावासेसु । कराविओ  
कणयमयक्खंभमंडिओ सयंवरमंडवो । ठवियाइं तत्थ सुवत्तसिंहा-  
सणाइं । निविट्ठा तेसु रायाणो ।

एत्थंतरे जणयाएसेण समागया पसरियपहाजालभालतिल-  
यालंकिया पुव्वदिस व्व रविबिबवंधुरा पसन्नवयणा पुत्तिमनिस व्व  
संपुत्तससिसुंदरा धवलदुकूलनिवसणा सयंवरमंडवं मंडयंती दमयंती ।  
तं दट्ठूण विम्हियमुहेहिं महिनाहेहिं स च्चेव चक्खुविवक्खेवस्स  
लक्खीकया ।

तो रायाएसेणं भद्दा अंतेउरस्स पडिहारी ।

कुमरीए पुरो निवकुमरविक्कमे कहिउमाढत्ता ॥

‘कासिनयरीनरेसो एसो दढभुयबलो बल्लो नाम ।

वरसु इमं जइ गंगं तुंगतरंगं महसि दट्ठुं ॥”

दमयंतीए भणियं—‘भद्दे, परवंचणवसणिणो कासिवासिणो  
सुव्वंति, ता न मे इमम्मि रमइ मणं ति अगगओ गच्छ ।’ तहेव  
काऊण भणियं तीए -

‘कुंकणवई नरिंदो एसो सिंहो त्ति वेरिकरिसिंहो ।

वरिऊण इमं कयलीवणेसु कीलसु सुहं गिम्हे ॥’

दमयंतीए भणियं—‘[भद्दे, ‘अंकारणकोवणा कुंकणा], तां न  
पारेमि इमं पए पए अणुकूलिउं । तो अन्नं कहेसु ।’ अगगओ गंतूण  
भणियं तीए—

२८

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

‘कम्हीरभूमिनाहो इमो महिंदो महिंदसगरुवो ।  
कुंकुमकेयारेसुं कीलिउकामा इमं वरसु ॥’

कुमरीए वुत्तं—‘भद्दे, तुसारसंभारभीरुयं भे सरीरयं॥ किं न  
तुमं जाणसि । तो इओ गच्छामो’ त्ति भणंती गंतूण अगगओ भणितं  
पवत्ता पडिहारी —

‘एसा निवो जयकोसो कोसंबीए पहु पउरकोसो ।  
मयरद्वयसमरुवो किं तुह हरिणच्छि हरइ मणं ॥’

कुमरीए वुत्तं—‘कविजले, अइरमणीया वरमाला विणम्म-  
विया ।’ भद्दाए चितियं—‘अप्पडिवयणमेव इमस्स नरिंदस्स  
पडिसेहो ।’ तओ अगो गंतूण वुत्तं भद्दाए—

‘कलयंठकंठि कंठे कलिगवइणो जयस्स खिव मालं ।  
करवालराहुणा जस्स कवलिया वेरिजससिणो ॥’

कुमरीए वुत्तं—‘तायसमाणवयपरिणामस्स नमो एयस्स॥’  
तओ भद्दाए अगगओ गंतूण भणियं

‘गयगमणि वीरमउडो गउडवई तुज्झ रुच्चइ किमेसो ।  
जस्स करिनियरघंटारवेण फुट्टइ व वंभंडं ।’

कुमरीए जंपियं—‘अम्मो ! एरिसं पि कसिणभेसणं माणु-  
साणं रुवं होइ त्ति तुरियं अगगओ गच्छ । वेवइ मे हिययं ।’ तओ  
ईसि हसंती गया अगगओ भद्दा जंपितं पत्ता—



दमयंतीसयंवरौ

\* \* \* \* \*

२९

‘पउमच्छि पउमनाहं अवंतिनाहं इमं कुणसु नाहं ।

सिप्पातरंगिणीतीरतरुवणे रमिउमिच्छंती ॥’

†कुमरीए वुत्तं—‘हद्धि ! परिस्संतम्हि इमिणा सयंवरमंडव-  
संचरणेण, ता किच्चिरं अज्ज वि भद्दा जंपिस्सइ ।’ चितियं च  
भद्दाए—‘एसो वि न मे मणमाणंदइ त्ति कहियं कुमरीए । त्ता  
अगगआ गच्छामि’ त्ति तहेव काउं जंपिउं पवत्ता भद्दा—

‘एसो नलो कुमारो निसहसुओ जस्स पिच्छिउं रुवं ।

मन्नइ सहस्सनयणो नयणसहस्सं धुवं सहलं ।’

†चितियं विम्हियमणाए ‘दमयंतीए—’अहो ! सयलरुववंत-  
पच्चाएसो अगसन्निवेसो, अहो ] असामन्नं लावणं, अहो ! उदुग्गं  
सोहग्गं, अहो ! महुंरिमनिवासो, विलासो । ता हियय, इमं पडुं  
पडिवज्जिऊग पावेसु पस्समपरिओस’ त्ति । तओ खित्ता नलस्स  
कंठकंदले वरमाला । [अहो ! सुवरियं, सुवरियं] त्ति समुट्ठिओ  
जणकलयलो ।

( श्रीसोमप्रभाचार्यविरचितः कुमारपालप्रतिबोधः पा. ४७-५० )



८

## पद्मावती उदअणस्स दिण्णा

•

( भास संस्कृत नाटककारों के कुल का आद्य पुरुष है इसलिए कालदृष्टि से अग्रपूजा का मान उसको दिया जाता है । भास का समय कौन सा है इस बारे में तीव्र मतभेद है । सब अंतर्गत और बहिर्गत आधारोंसे वह भगवान महावीर और भगवान गौतमबुद्ध इन द्रष्टाओं के पश्चात् लेकिन शूद्रक-कालिदास के पूर्व के समय में हो गया होगा । भास नाटकचक्र में तेरह नाटक और 'यज्ञफलम्' यह नव उपलब्ध नाटक भास के नाम पर चलते हैं । उसने 'दूतवाक्यम्' 'उरुभंग' आदि एकांकी नाटक प्रारंभी अवस्था में तथा 'प्रतिमा', 'स्वप्नवासवदत्तम्', आदि प्रौढ नाटक पश्चात् काल में लिखे होंगे । सब दृष्टि से उत्कृष्ट 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक ने भास को चिरंजीवत्व प्रदान किया है । यहाँ वत्सराज उपयनराजा की प्रिय सभ्राज्जो वासवदत्ता अज्ञातस्थिति में थी, तब उसी के सामने पद्मावती राजकन्या का विवाह राजा उदयन से करने की वार्ता उसे मिलती है । यह मार्मिक प्रसंग भास ने अत्यंत कौशल्य से चित्रित किया है । इस पाठ की भाषा शौरसेनी है ।

संस्कृत नाटककारांच्या कुलाचा आद्यपुरुष म्हणून कालद्रष्ट्याचा अग्रपुजेचा मान भासाकडे जातो भासाच्या कालासंबंधी तीव्र मतभेद आहेत .

## पद्मावती उदयनराजस्य दिग्ग \* \* \* \* \*

सर्वं अंतर्गतं व बहिर्गतं पुराण्यांचा विचार करता तो भगवान महावीर व भगवान गौतमबुद्ध या द्रष्टृचांच्या नंतर परंतु शूद्रक, कालिदासांच्या पूर्वी-च्या काळात होऊन गेला असावा. भास नाटकचक्रातील तेरा नाटके व यज्ञ-फलम् हे नवीन उपलब्ध नाटक ही भासाच्या नावावर मोडतात. त्याने 'दूतवाक्यम्', 'उरुभंग' आदि एकाकी नाटके सुरवातीस; तर 'प्रतिमा' 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि प्रौढ नाटके अखेरीस लिहिली असावीत. सर्व द्रष्टृचा उत्कृष्ट असलेल्या 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटकाने भासास चिरंजीवत्व मिळवून दिले आहे. येथे वत्सराज उदयनराजाची प्रिय राणी वासवदत्ता अज्ञातावस्थेत असताना तिच्या समोरच पद्मावतीचा उदयनराजाशी विवाह करण्याचे ठरल्याची वार्ता तिच्या कळते. हा मार्मिक प्रसंग भासाने मोठ्या कौशल्याने रंगविला आहे. या पाठातील भाषा शौरसेनी आहे.

(ततः प्रविशति चेटी ।)

चेटी- ( आकाशे ) कुंजरिए, कुंजरिए, कुंहिं कुंहिं भट्टिदारिआ पद्मावती । (श्रुतिमभिनीय) किं भणासि 'एसा भट्टिदारिआ मोहवीलदामडवस्स पस्सदी कुंदुएण कीलदि' त्ति । जाव भट्टिदारिअं उपसप्पिसं । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो, इअं भट्टिदारिआ उक्करीदकण्णचिलिएण वाआमसजादसद-बिदुविइत्तिदेण परिस्सत्तरमणीअदसण्णं मुहणं कुंदुएण कीलंतो इदो एव्व ओअच्छदि । जाव उवसप्पिस्सं । (निष्क्रान्ता)

इति प्रवेशकः ।

(यानंतर प्रवेशकः )  
(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा-वासवदत्तया सह ।)

३२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

वासवदत्ता-हला, एसो दे कंदुओ ।

पद्मावती-अय्ये, <sup>असणे-थापेकी</sup> भादु दाणि एत्तअं ।वासवदत्ता-हला, अदिचिरं कंदुएण <sup>देजे</sup> कीलअं अहिअसंजादराआ  
परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता ।  
<sup>परकेरमाभा</sup>चेटी-<sup>५५५</sup>कीलदु, कीलदु दाव भट्टिदारिआ । णिव्वत्तीअदु दाव अअं  
कण्णाभावरमणीओ कालो ।पद्मावती-अय्ये, किं दाणी मं ओहसिदं विअ णिज्जाअंसि ।वासवदत्ता-णंहि णहि । हला, अधिकं अज्जे सोहसि । अभिदो  
विअ दे अज्जे वरमुहं पेक्खामि । <sup>५५६</sup>पेक्खामि ।

पद्मावती-अवेहि । मा दाणि मं ओहस ।

वासवदत्ता-एसमिह तुण्हिआ भविस्समहासेणवहू ।

पद्मावती-को एसो महासेणो णाम ।

वासवदत्ता-अत्थि उज्जइणीए राआ पज्जोओ णाम । तस्स बल-  
परिमाणणिव्वुत्तं णामहेअं महासेणो त्ति ।

चेटी-भट्टिदारिआ तेण रण्णा सह संबंधं णेच्छदि ।

वासवदत्ता-अह केण खु दाणि अभिलसदि ।

चेटी-अत्थि वच्छराओ उदअणो णाम । तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ  
अभिलसदि ।

पद्मावती उदअणस्स दिण्णा \* \* \* \* ३३

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि । (प्रकाशम्) केण कारणेण ।

चेटी—साणक्कोसो त्ति ।

वासवदत्ता—( आत्मगतम् ) जाणामि, जाणामि । अअं वि जणो एव्वं उम्मादिदो ।

चेटी—भट्टिदारिए, जदि सो राआ विरूवो भवे--

वासवदत्ता—णहि णहि । दंसणीओ एव्व ।

पद्मावती—अय्ये, कहं तुवं जाणासि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कतो समुदां-  
आरो । किं दाणिं करिस्सं । होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्)  
हला, एव्वं उज्जइणीओ जणो मंतेदि ।

पद्मावती—जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणो-  
भिरामं खु सोभगं णामं ।

( ततः प्रविशति धात्री । )

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए, दिण्णा सि ।

वासवदत्ता अय्ये, कस्स ।

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स ।

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ।

३४ \* \* \* \* \* पाययकुसुमावली

धात्री-कुसली । सो इह आअदो । तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ ।  
वासवदत्ता-अच्चाहिदं ।

धात्री-किं एत्थ अच्चाहिदं ।

वासवदत्ता-ण हु किं चि । तह णाम संतप्पिअ उदासीणो होदि त्ति ।  
धात्री-अय्ये, आअमप्पहाणामि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअ-  
आणि होंति ।

वासवदत्ता-अय्ये, सअं एव्व तेण वरिदा ।

धात्री-णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णा-  
णवरोरुवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा ।

वासवदत्ता-(आत्मगतम्) एव्वं । अणवरद्धो दाणि एत्थ अय्यउत्तो ।  
अपराचेटी-(प्रविश्य) तुवरदु तुदरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल  
सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमंगलं कादव्वं ति  
अम्हाणं भट्टिणी भणादि ।

वासवदत्ता-( आत्मगतम् ) जह जह तुवरदि, तह तह अंधीकरेदि  
मे हिअअं ।

धात्री-एदु, एदु भट्टिदारिआ ।

( निष्क्रान्ताः सव । )

( भासकृतम् स्वप्नवासवदत्तम्-द्वितीयोऽङ्कः )



९

## मुखवत्तणस्स पाहुडो

(घनश्याम अपनेको 'महाराष्ट्रचूडामणि' कहता था और कंठरव 'उपाधि लगाता था। उसका समय ई. स. १७०० से १७५० तक था। वह महान् ग्रंथकार था। उसने १८ वें वर्ष के लेखन शुरू किया और ६४ ग्रंथ संस्कृत में, २० प्राकृत में और २५ मराठी में लिखे हैं ऐसा उसने कहा है। राजशेखर के 'कर्पूर मंजरी' के सदृश उसने 'आनंद सुंदरी' नाम का सदृक लिखा है। यहाँ विदूषक अपनी मूर्खता से बाघ का चित्र देखकर भयभीत होता है और दूसरे को भी भयभीत करता है। बाघ का नाम सुनते ही आनंदसुंदरी चिल्लाकर राजा को आलिंगन देती है। विदूषक की मूर्खता से ही राजा को उसका आलिंगन सुख मिलता है; इसलिए राजा अपने हाथ से रत्नजडित सुवर्णकड़ा पारितोषिक के रूप में देता है। यह प्रसंग नाट्यकारने बहुत विनोदपूर्ण ढंगसे चित्रित किया है। इसमें गद्यभाग शीरसेनी और पद्यभाग माहाराष्ट्री में लिखा है।

स्वतःत्वा 'महाराष्ट्रचूडामणी' म्हणवून घेऊन 'कंठीरव' विरुद्ध वाप-रणारा घनश्याम हा कवी इ. स. १७०० ते १७५० या काळात होऊन गेला तो महान् ग्रंथकार असून त्याने वयाच्या १८व्या वर्षी पासून लेखनास सुरवात केली. त्याने ६४ ग्रंथ संस्कृतात, २० प्राकृतात व २५ मराठीत लिहिले

३६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

असे त्याने म्हटले आहे. राजशेखरच्या कर्पूर मंजरी प्रमाणेच त्याने आनंद-  
सुंदरी' नावाचे सट्टक लिहिले. येथे विदूषक आपल्या मूर्खपणाने वाघाचे चित्र-  
पाहुन घाबरतो व दुसऱ्यालाही घाबरवितो. वाघाचे नाव काढताच आनंदसुं-  
दरी किंचाळून राजाला मिठी मारते. विदूषकाच्या या मूर्खपणानेच राजाला  
तिच्या दृढालिंगनाचे सुख मिळते, म्हणून तो आपल्या हातातील रत्नजडित  
सोम्याचे कडे त्यास बक्षीस देतो. नाटकाराने हा प्रसंग अत्यंत विनोद-  
पूर्ण रंगवला आहे. यातील गद्यभाग शौरसेनीत तर पद्यभाग महाराष्ट्री  
प्रायेत आहे.)

राजा-के उण दुर्वे एदे ।

विदूषक:-एसो कंचुई, एसा उण दाई ।

राजा-(उपसृत्य) अवि कुसलं घत्ती कंचुइणं ।

उभौ-(स्वगतम्) कहां महाराओ जेवें समां अंदो । ( प्रकाशम् )

महाराअस्स पाअकमलणिहालणेण ।

विदूषक:-मह वि त्ति भणह ।

प्रतिहारी-अय्य, कहां अहिदो वि मक्कडचेदं पअडेसि ।

विदूषक:-हु दाणि मा कि त्ति भण, खुहापिसाआविदो मिह ।

प्रतिहारी-वित्तं ठाइ मज्झ हत्थम्मि ।

मन्दारक:-ण हु पिसाअ पिसाओ वाहइ ।

राजा-मा तह जंप, बम्हणो खु ।

विदूषक:-(सक्रोधम्) ठरावसद, पुणो वि एक्कवारं बोल्ल ।

मन्दारक:-किं तुह तादो ठेरो ण जादो ।

विदूषक:-कैहं सणिहाणो महाराअस्स वअस्सतादं दूसेसि ।

पिंगलक:-तुवं कहां महाराअस्स कंचुइणं उवाल्हसि ।



मुखसत्तणस्स पाहुडो \* \* \* \* ३७

विदूषकः-पिंगलअ, भत्तारस्स पिअसहं ममं मा अवमण्णसु ।  
(पिंगलको लज्जते ।)

प्रतिहारी-<sup>आय</sup>अज्ज, किं ति तुमं धणिघरंजामाअरो विअ बम्हण-  
बट्टकी विअ तुस्सकपासि अवीसकहू विअ रोइगोमाऊ  
विअ सुव्वलोअं डससि ।

विदूषकः-<sup>भट्टकोका</sup>कुक्कुरो बडबडइ, राआ आअण्णेदि ।

घात्रीकञ्चुकिना-<sup>उमाहारउवा</sup>जं बम्हणसिरोमणी आणवेदि ।

आनन्दसुन्दरी--(स्वगतम्) अहो बम्हणस्स अणाअरिअत्तणं ।

राजा--(जनान्तिकम्) <sup>आजलाइकेन</sup>वअस्स अतेउरं गदुअं रहस्सदाए मंदार-  
अकंचुइणं पच्चारेहि ।

विदूषकः-तुह । (इति निष्क्रम्य तेन सह प्रविशति ।)

मन्दारकः--(श्रममभिनीय स्खलननाटिकतेन) कहं पइट्ठाणं ठक्कामि ।  
(निश्चस्य उपसृत्य) जेदु भट्टा ।

विदूषकः--(समन्तादवलोकयन् उच्चकैः) भो वग्घो वग्घो ।  
(आनन्दसुन्दरी ससंभ्रमरणरणिकं राजानमालिङ्गति ।  
घात्रीकुरंगकौ मन्दारकश्च भयं नाटयन्ति ।)

प्रतिहारी-किं एदं उवट्ठिअं । (मन्दारको दिशो निभालयन् दण्ड-  
मधो घट्टयति ।)

विदूषकः--(कण्ठे यज्ञसूत्रं बध्नन्) कहिं णु खु धावामि ।

राजा-हुं मुख, कहं पडिघडिअं भमो ।

विदूषकः-सच्चं पेक्खणिज्जं खु ।

मन्दारकः-णं मह विवभंती जादा ।

३८

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावलो

राजा--(स्पर्शसुखं नाटयन्)

ससिअरपञ्जरंतचंदकंतो

चणअहिमंबुविहिट्टचंदणं वा ।

सुरउलपगिदो सुहारसो किं

पिअजणफंसवसा णं होइ एव्वं ॥

तह हि,

अंगेसुं पिट्टुविअईलफुल्लमुद्दा

डोलेसुं सरससरोअकोसलच्छी ।

मुत्तीए णववरिसापओदकिच्चं

चित्ते मे उण परबम्हमोअसारो ॥

मन्दारकः-कथं भाए सो वग्घो ।

विदूषकः-संगीदसालादुवारअलोवरिभाअम्मि ।

राजा--अहह, मुखेण चित्तवग्घं पेक्खिअ तुण्हि कोलाहलो किओ

विदूषकः-(स्वगतम्) किं णु खु इमस्स ऊणत्तणं परं दु गल्लूरणादिअ  
णत्थि । (प्रकाशं सरोषम्) भो किदग्घो सि जं मह पाहावेण  
आलिङ्गणं पत्तो वि एव्वं मत्तेसि ।राजा--( सहर्षम् ) तुह पाहाओ ( इति विदूषकाय मणिवलयम-  
पयति ।

विदूषक--( करे धृत्वा ) [ भो अहअं वि अद्धमहीसव्वमोमो ]

राजा--तं कहं ।

विदूषकः-जं तुए सह मह वि एक्कं हत्थकडअं

( घणस्सामविरइआ आणंदसुंदरी—१ पा. १४-१६ )

\*\*\*

१०

## नमुक्कारप्पभावो

•

(इस पाठ में पंचनमस्कार मंत्र का महत्त्व तथा प्रभाव बतलाने वाले कुछ श्लोक विविध ग्रंथों से चुने हैं ।

या पाठात् पंचनमस्कार मंत्राच्चे महत्त्व च प्रभाव वर्णन करणारे काही श्लोक विविध ग्रंथातून निवडून घेतले आहेत.)

नमो परमपूयारुहाणं अरिहंताणं ।

नमो सुहसमिद्धाणं सिद्धाणं ।

नमो पंचविहायारमायरंताणं आयरियाणं ।

नमो सज्झायज्झाणरयाणं उवज्झायाणं ।

नमो मोक्खसाहगाणं साहूणं ॥१॥ ( बारवईविणासो )

एसो पंचणमोयारो सब्बप<sup>पि</sup>विपणासणो ।

मंगलेसु य सब्बेसु पढमं हवइ मंगलं ॥२॥ (मूलाचारः)

सुचिरं पि तवो तवियं निच्चं चरणं सुयं च बहुपडियं ।

जइ ता न नमोक्कारे रइ ताओ तं गयं विहलं ॥३॥

(श्रीनमस्कारबृहत्फल)

ताव न जायइ चित्तेण चित्तियं पत्थियं च वायाए ।

काएण समाढत्तं जाव न सरिओ नमुक्कारो ॥४॥

(श्रीमहानिशीथसूत्र)

४०

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

एस नमुक्कारो सरणं संसारसमरपडियाणं ।

कारणमसंखदुक्खक्खयस्स हेऊ <sup>अस्स</sup> सिवपहस्स ॥५॥

कल्लाणकप्पतरुणो अवज्झवीयं पयडमायंडो ।

भवहिमगिरिसिहराणं पक्खिपहू पावभूयंगाणं ॥६॥

( वृद्धनमस्कारफल )

वाहिजलजलणतक्करहरिकरिसंगामविसहरभयाइं ।

नासंति तक्खणेणं नवकारपहाणमंतेणं ॥७॥

न य तस्स किंचि पहवइ डाइणिवेयालरक्खमारिभयं ।

नवकारपहावेणं नासंति य सयलदुरियाइं ॥८॥

हिययगुहाए नवकारकेसरी जाण संठिओ निच्चं ।

कम्मट्ठगंठिदोषट्ठदृयं ताण परिणट्ठं ॥९॥ (करकंडुचरियं)

जिणसासणस्स सारो चउदसपुब्बाण जो समुद्धारो ।

जस्स मणे नवकारो संसारो तस्स किं कुणइ ॥१०॥

( लघुनमस्कारफल )

नवकारओ अन्नो सारो मंतो न अत्थि तिथलोए ।

तम्हा हु अणुदिणं चिय पडियव्वो परममत्तीए ॥११॥

( श्राद्धदिनकृत्यसूत्रम् )

भोयणसमए सयणे विबोहणे पवेसणे भए वसणे ।

पंचणमुक्कारं खलु सुमरिज्जा सव्वकालं पि ॥१२॥

( उपदेशतरंगिणी )

११

## वज्जालगं

•

(परंपरासे माना जाता है कि 'वज्जालगं' का कर्ता जयवत्लभ है; लेकिन तीसरी गाथा से 'जयवत्लभं वज्जालगं' यही इस ग्रंथ का नाम है ऐसा स्पष्ट होता है। ७९४ वें गाथा में कहा है कि 'वज्जालए सयललोय-भिट्ठिए' सब लोगों को अभिलषणीय वज्जालगं का नाम जयवत्लभ जगवत्लभ है यही सिद्ध होता है। वज्जालगं के संस्कृत छायाकार रत्नदेव ने (ई.स. १३३६) अपनी टीका में 'इसका कर्ता श्वेतांबर जैन था' ऐसा कहा है। वह १४ वें शतक के पूर्व हुआ होगा ऐसा अनुमान किया जाता है।

हाल की 'गाथासत्तसई' (गाथासप्तशती) में सिर्फ एक ही गाथा में शब्द द्वारा एक ही प्रसंग का दुबहू चित्र दिया है। लेकिन वज्जालगं में एकत्र ही विषय पर अनेक गाथाओं का संग्रह कर विषय स्पष्ट किया है। वज्जा याने पद्धति और वज्जालगं का अर्थ है एक ही विषय पर अनेक गाथाओं का संग्रह। इसमें सोदार, गाहा कव्व, सज्जण दुज्जण, सेवय, ममर, गुण, चंदण, आदि विषयों पर ७९५ गाथाओं का संग्रह है। यहाँ दीणवज्जा' में दीन मनष्य की याचक वृत्ति, सिंहवज्जा' में शेर की स्वतंत्र पराक्रमी वृत्ति, तथा 'चंदनवज्जा' में परोपकारी सज्जन के समान चंदन की पद्धति दी है।

४२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

परंपरेने 'वज्जालगं' चा कर्ता जयवल्लभ मानला जातो. पण तिसऱ्या गाथेवरून 'जयवल्लभ वज्जालगं' हेच या ग्रंथाचे नाव असल्याचे दिसून येते. ७९४गाथेत 'वज्जालए सयललोभिष्टिए-सर्वं लोकांना अभिलषणीय अशा 'वज्जालगं'चे नाव 'जयवल्लभ' जगवल्लभ होय हेच सिद्ध होते. यावर संस्कृत छाया लिहिणाऱ्या रत्नदेवाने (इ.स' १३३६) याचा कर्ता श्वेतांबर जैन होता असे सांगितले आहे. १४व्या शतकाच्या अगोदर होऊन गेला असावा असे अनुमान केले जाते.

हालाच्या गाहासत्तसई' (गाथासप्तशती)मध्ये केवळ एकाच गाथेत एका प्रसंगाचे हुबेहुब शब्दचित्र रेखाटले आहे. परंतु वज्जालगंमध्ये एकाच विषया वरील अनेक गाथांचा संग्रह करून तो विषय स्पष्ट केला आहे. 'वज्जा' म्हणजे पद्धती आणि 'वज्जालगं' म्हणजे एकाच विषयावरील अनेक गाथांचा केलेला संग्रह. यात सोयार गाहा, कव्व सज्जन, दुज्जन, सेवय भमर, मुण, चंदण, आदि विषयावर सुभाषितवज्जा ७९५गाथांचा संग्रह आहे येथे दीनवज्जा मध्ये दीन मनुष्याची याचकवृत्ती, 'सिंहवज्जेत' सिंहाची स्वतंत्र पराक्रमी वृत्ती आणि चंदन वज्जेत परोपकारी सज्जनाप्रमाणे चंदनाची पद्धती वर्णिली आहे.)

( अ ) दीणवज्जा

परपत्थणापवन्नं मा जणणि जणेसु एरिसं पुत्तं ।

उयरे वि मा धरिज्जसु पत्थणभंगो कओ जेण ॥ १ ॥

ता रूवं ताव गुणा लज्जा सच्चं कुलकमो ताव ।

ताव च्चिय अहिमाणो देहि त्ति न भण्णए जाव ॥ २ ॥

तिणतूलं पि हु लहुयं दीणं दइवेण निम्मियं भुवणे ।

वाएण किं न नीयं अप्पाणं पत्थणभएण ॥ ३ ॥

वत्जालगं

\*

\*

\*

\*

\*

४३

धरथरथरेइ हियं जीहा घोलेइ कंठमज्जम्मि ।

नासइ मुह्लावण्णं देहि त्ति परं भणंतस्स ॥ ४ ॥

किसिणिज्जंति लयंता उदहिजलं जलहरा पयत्तेण ।

धवलीहुंति हु देता देतलयंतंतरं पेच्छ ॥ ५ ॥

( म ) सीहवज्जा

किं करइ कुरंगी बहुसुएहि ववसायमाणरहिएहिं ।

एक्केण वि गयघडदारणेण सिंही सुहं सुवइ ॥ ६ ॥

जाइविसुद्धाण नमो ताण मइंदाण अहह जियलोए ।

जे जे कुलम्मि जाया ते ते मयकुंभनिद्लणा ॥ ७ ॥

मा जाणह जइ तुंगत्तणेण पुरिसाण होइ सोंडीरं ।

मडहो वि मइंदो करिवराण कुंभत्थलं दलइ ॥ ८ ॥

वेणिण वि रणुप्पन्ना बज्जंति गया न चेव केसरिणो ।

संभाविज्जइ मरणं न गंजणं धीरपुरिसाणं ॥ ९ ॥

( र ) चंदणवज्जा

सुसिएण निहसिएण वि तह कह वि हु चंदणेण महमहियं ।

सरसा वि कुसुममाला जह जाया परिमलविलक्खा ॥ १० ॥

परसुच्छेयपहरणेण निहसणे नेय उज्झिया पयई ।

चंदण सन्नयसीसो तेण तुमं वंदए लोओ ॥ ११ ॥

४४

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

उत्तमकुलेसु जम्मं तुह चंदण तरुवराण मज्झम्मि ।

दुज्जीहाण खलाण य निच्चं चिय तेण अणुरत्तो ॥१२॥

एक्को च्चिय दोसो तारिसस्स चंदणदुमस्स विहिघडिओ ।

जीसे दुट्ठभुयंगा खणं पि पासं न मेल्लति ॥१३॥

बहुतरुवराण मज्जे चंदणविडवो भुयंगदोसेण ।

छिज्जइ निरावराहो साहु व्व असाहुसंगेण ॥१४॥

{ १३३-१३७, २००-२०३, ७२८-७३२ }





१२

## उज्जलसीलो दहमुहो

•

{ श्रीविमलसूरि ने मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के चरित्र पर 'पउम-चरियं' ( पञ्चचरित्रम् ) नाम का प्राकृत ग्रंथ लिखा । वे ई. स. के पहले तीन शतक के अवधि में हो गये होंगे । ' पउमचरियं ' में ११८ पर्व हैं और २००० के ऊपर श्लोक हैं । रावणमहाराज राक्षसवंशीय विद्याधर राजा लंका में राज्य करते थे । वे ६३ शलाकापुरुष में प्रतिवासुदेव थे । सिर्फ सीताहरण का दोष छोड़ दिया जाय, तो वे उज्ज्वल चारित्र्य के थे, यही इस पाठ से ज्ञात होता है ।

श्रीविमलसूरीनी मर्यादापुरुषोत्तम रामचंद्रांच्या चरित्रावर 'पउम-चरियं' ( पञ्चचरित्रम् ) नावाचा प्राकृतात ग्रंथ लिहिला. ते इ. स. च्या पहिल्या तीन शतकात केव्हा तरी होऊन गेले असावेत. ' पउमचरियं ' मध्ये ११८ पर्व असून २००० वर श्लोक आहेत. रावणमहाराज राक्षसवंशीय विद्याधर राजा असून लंकेमध्ये राज्य करीत होते. ते ६३ शलाकापुरुषात प्रतिवासुदेव होते. केवळ सीताहरणाचा दोष सोडून दिला तर ते उज्ज्वल चारित्रशील होते. हेच या पाठात दिसून येते. )

४६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

एत्थंतरम्मि जो सो ठविओ इदेणलौगपोल ते ।

नलकुव्वरो त्ति नामं दुल्लंघपुरे परिव्वसइ ॥ १ ॥

अह तेण अग्गिपउरे पायारो जोयणा सयं रइओ ।

जंताणि बहुविहाणि य रिउभइजीयंतनासाणि ॥ २ ॥

गंतूण नंदणवणं वंदित्ता चेइयाणि भावेणं ।

पुणरवि य पडिनियत्तो दहवयणो निययआवासं ॥ ३ ॥

सन्नद्धबद्धकवया पहत्यपमुहा भडा बलसमग्गा ।

पेसेइ गहणहेउं दुल्लंघपुरि दहग्गीवो ॥ ४ ॥

पत्ता पेच्छंति पुरि समंतओ जलणतुंगपायारं ।

जंतेसु अइदुल्लंघं भयजणणं सत्तुसुहडाणं ॥ ५ ॥

अह वेढियं समत्थं अल्लीणा रक्खसा कउच्छाहा ।

हम्मंति वेरिएणं बहुविहविज्जापओगेहि ॥ ६ ॥

मारिज्जंतेहि तओ रक्खससुहडेहि पेसिओ पुरिसो ।

गंतूण सामियं सो भणइ पहू मे निसामेहि ॥ ७ ॥

डज्जंति अल्लियंता सव्वत्तो धगधगंतजलणेणं ।

मारिज्जंति पटुत्ता जंतेसु करालवयणेषु ॥ ८ ॥

सोऊण इमं वयणं लंकाहिवमंतिणो मइपगब्भा ।

निययबलरक्खणट्टे जाव उवायं विचित्तेति ॥ ९ ॥

ताव य उबरंभाए दूई नलकुव्वरस्स महिलाए ।

संपेसिया य पत्ता दहमुहनेहाणुरत्ताए ॥ १० ॥

## उज्जलसीलो दहमुहो

\*

\*

\*

\*

४७

काऊण सिरपणामं एगंते भणइ रावणं दूई ।

जेण निमित्तेण पहु विसज्जिया तं निसामेही ॥ ११ ॥

नलकुब्बरस्स महिला उवरंभा नाम अत्थि विक्खाया ।

ताए विसज्जिया हु नामेण विचित्तमाला हं ॥ १२ ॥

सा तुज्झ दरिसणुस्सुयहियया चित्तेइ पेमसंबधा ।

निब्भारगुणाणुरत्ता कुणसु पसायं दरिसणेणं ॥ १३ ॥

ठइऊण दो वि कण्णे रयणासवनंदणो भणइ एवं ।

विसं परमहिलं पि य न रूवमंतं पि पेच्छामि ॥ १४ ॥

इहपरलोयविरुद्धं परदारं वज्जियव्वयं निच्चं ।

उच्छिद्वभोयणं पिव नरेण ददसीलजुत्तणं ॥ १५ ॥

नाऊण दूइकज्जं भणिओ मंतीहि तत्थ कुसलेहिं ।

अलियमवि भासियव्वं अप्पहिथं परिगणत्तेहिं ॥ १६ ॥

तुट्ठा कयाइ महिला सामियभेयं करेज्ज नयरस्स ।

सम्माणदिन्नपसरा सब्भावपरायणा होइ ॥ १७ ॥

भणिऊण एवमेयं दूई वि विसज्जिया दहमुहेणं ।

गंतूण सामणीए साहइ संदेसयं सब्बं ॥ १८ ॥

सुणिऊण य उवरंभा वयणं दूईए निग्गया तुरिया ।

पत्ता दसाणणहरं तत्थ पविट्ठा सुहासीणा ॥ १९ ॥

भणिया य दहमुहेणं भद्दे किं एत्थ रइसुहं रण्णे ।

न य होइ माणियव्वं दुल्लंघपुरं पमोत्तूणं ॥ २० ॥

४८

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुमुमावली

सोऊणं उवरंभा तं वयणं महुरमम्मणुल्लावं ।

देइ भयणाउरा सा विज्जा आसालिया तस्स ॥ २१ ॥

तं पाविऊण विज्जं दहवयणो <sup>पतंगमैनासह</sup> सव्वबलसमूहेण ।

दुल्लंघपुरनिसेस <sup>जुज्जो</sup> गतूण <sup>तज्जो</sup> हरइ पायारं ॥ २२ ॥

सोऊण रावणं सो <sup>येहन नएअण</sup> समागय नासिय च पायारं ।

अहिमाणेण य राया <sup>विणिगओ</sup> कुब्बरो सहसा ॥ २३ ॥

अह जुज्जिउ <sup>दोहापणे पुईयुमणे</sup> पवत्ता <sup>लोहरनिद्या</sup> समय चिय <sup>सायवेदी</sup> रक्खसेहि संगामे ।

सरसत्तिकोततोमरउभओ <sup>जोहा शोब</sup> विखप्पंतसंघाए ॥ २४ ॥

अह दारुणम्मि जुज्जे <sup>दोछान्नीटी फेदति मयमिइय</sup> वट्टे <sup>पाद दोर</sup> सुहडजीवनासयरं ।

गहिओ बिहीसणेणं नलकुब्बरपत्थिवो <sup>राभा युईयुमित</sup> समरे ॥ २५ ॥

लंकाहिवेण भणिया उवरंभा मह तुमं गुरु भदे ।

जंदेसि <sup>उदयमुदी</sup> बलसमिद्धं विज्जं आसालियं नाम ॥ २६ ॥

उत्तमकुलसंभूया जाया वि य सुंदरीए गबभम्मि ।

कासद्वयस्स दुहिया सीलं रक्खंतिया होहि ॥ २७ ॥

अज्ज वि तुज्ज पिययमो जीवइ भदे <sup>सुंदरापयमम</sup> सुवलायणा ।

ऐएण सह विसिट्ठे भुंजसु भोए चिरं काले ॥ २८ ॥

संपूइऊण मक्को राया <sup>वोईटसुआ</sup> नलकुब्बरो दहमूहेण ।

अमणियदोसविभाओ <sup>वोईटसुआ</sup> भुंजइ भोगे समं तीए ॥ २९ ॥

( सिरिविमलसूरिविरइयं पउमचरियं-१२: ३८, ४५ - ७२ )

१३

## बोहिदुल्लह कहा

(लक्ष्मणगणि ने ७ वें तीर्थकर भगवान् सुपाश्वर्चनाथ के चरित्र पर 'सुपासणाह चरियं' नाम का प्राकृत में ग्रंथ लिखा है। उसमें श्रावक धर्म के अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रतों के प्रत्येक अतिचार पर अनेक कथाएँ लिखी हैं। बोध कितना दुर्लभ है यह दिखाने के लिए यहाँ एक कंजूस श्रीमान् की कथा द्वारा अत्यंत मार्मिकता से दिखाया है।

लक्ष्मणगणीनी ७ वें तीर्थकर भगवान् सुपाश्वर्चनाथांच्या चरित्रावर 'सुपासणाहचरियं' नावाचा प्राकृतात ग्रंथ लिहिला आहे. त्यात श्रावकाची अणुव्रते, गुणव्रते व शिक्षाव्रते आणि त्यांच्या प्रत्येक अतिचारावर अनेक कथा सांगितल्या आहेत. येथे बोध मिळणे किती दुर्लभ आहे हे एका कंजूष श्रीमंताची जीवन कथा देऊन मोठ्या मार्मिक पणे दाखवले आहे.)

येथे-५

इत्थेव असि सेट्टी सागरदत्तो त्ति नाम दविण्डुडो ।

अइदविणरक्खणज्जणपरायणो सव्वकालं पि ॥ १ ॥

अह अन्नया य मंतेइ नियतणयं सोहडं जहा वच्छ ।

दुक्खेण इमा लच्छी समज्जिया जाणसि तुमं पि ॥ २ ॥

५०

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

तम्हा कीरउ रक्खा इमीए बाहिं गिहस्स दूरम्मि ।

गेहम्मि ठिया संती साहीणा सव्वलोयस्स ॥ ३ ॥

ता पेयवणे गंतुं निहणिज्जउ <sup>कोवात्ता</sup> कम्मि रहपएसम्मि ।

आवइगयाण जेणं साहिज्जं कुगइ अम्ह इमा ॥ ४ ॥

एवं रहम्मि मंतिवि तणएण समं गओ मसाणम्मि ।

खणिऊण गुहं गैत्तं निहणंति तहिं दविणकलसे ॥ ५ ॥

पूरेऊणं गत्तं भणिओ। तो सेट्ठिणा इमं तणओ ।

पुत्त पलोएसु तुमं गंतुं सव्वं पि दिसिचक्कं ॥ ६ ॥

जइ पुण केण वि दिट्ठं हविज्ज सो भणइ ताय ।

निउणो तं अइभीसणे मसाणे रयणीए एइ को एत्थ ॥ ७ ॥

तो भणइ पिया सुनिरुवियस्स इह होइ वच्छ को दोसो ।

इय भणिए पुत्तेणं गंतूण निरुवियं सव्वं ॥ ८ ॥

दिट्ठो तो कप्पडिओ पडिओ मयखिहुएण गयचेट्ठो ।

सासं निहंभिऊणं दव्वट्ठाणं पलोयंतो ॥ ९ ॥

तेणागंतुं कहियं गयसासो को वि चिट्ठए तत्थ ।

तो सेट्ठिणा वि भणियं जइ पुण सो दव्वलांभेण ॥ १० ॥

सुनिहंभिऊण सासं पडिओ मयखेहुयं विहेऊण ।

ता किं पि तस्स अंगं छेत्तुं छुरियाए लहुं एहि ॥ ११ ॥

इय कहिए तक्कणं छेत्तूण समागओ तओ भणिओ ।

बीयं पि छिंद सवणं जइ पुण धुत्तो इय सहेइ ॥ १२ ॥

बोहिदुल्लह कहा

\*

\*

\*

\*

\*

५१

तेण वि तहेण विहियं छिन्ना नासा वि ओट्टुउडसहिया ।  
तेण वि सव्वं सहियं दव्वट्टा जेण इय भणियं ॥ १३ ॥

तं नत्थि जं न कुव्वंति पाणिणो साहसं दविणकज्जे ।  
नियजीवियं पि विच्चंति किं पुणो छेयणं तणुणो ॥ १४ ॥

तो कप्पडियं मडयं कलिऊण गओ गिहम्मि सो सेट्ठी ।  
सुयपरिकलिओ इत्तो कप्पडिणावि हु झडत्ति ॥ १५ ॥

उट्टेऊणं गहियं तं दव्वं गोवियं च अन्नत्थ ।  
गहिउं कित्तियमेत्तं पत्तो नयरम्मि गिण्हेइ ॥ १६ ॥

वत्थागरुकप्परप्पमुहाइं निवसणेण सुहुमेण ।  
पच्छाइयलुयअंगो विलसइ वेसाण गेहेसु ॥ १७ ॥

अह अन्नया य सो वि हु गच्छइ उज्जाणे ।  
मोयगमंडगवडयाइं नेइ तत्थप्पणा सद्धि ॥ १८ ॥

५५५

नयरस्स पाउलाइं वि तेणं सदावियाइं सव्वाइं ।  
हिट्ठो ताण पयच्छइ भोयणवत्थाइयं सव्वं ॥ १९ ॥

तह मग्गणाण जम्मं गिराण दीणाइयाण वि जहिच्छं ।  
ते वि हु तुट्ठा वण्णंति कण्णनामं विहेऊण ॥ २० ॥

तो जणपरंपराए तं सोउं तस्स संकिओ सेट्ठी ।  
मम दव्वं नो गहियं तट्ठाणाओ इमेणं ति ॥ २१ ॥

जइ पुण सो कप्पडिओ तइआ सासं निरुंभिउं थक्को ।  
इय चित्तंतो तस्स वि पलोयणत्थं गओ तत्थ ॥ २२ ॥

५२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

पेच्छइ य तयं कुंकुमपिंजरियं वेसलोयपरियरियं ।

वरवत्थपिहियछिन्नोदुनासियं चित्तए तत्तो ॥२३॥

दुक्खेण जो विढप्पइ अत्थो दुक्खेण भुज्जए सो उ ।

चोरचरडाण पायं चरियं एवंविहं होइ ॥२४॥

इय चित्तिउं मसाणे पत्तो सो पिच्छइ तयं गत्तं ।

कलसजुयलेण रहियं अहियं तो विलविउं लग्गो ॥२५॥

हा देव्व दव्वनासो कह जाओ मज्झ मंदपुण्णस्स ।

सच्चं चिय जं केण वि विउसेणं पढियमेवं ति ॥२६॥

न य मे दिन्नं दाणं न विलसियं विविहभोगभंगीहि ।

नासो वि य लच्छीए जाओ तो जामि रायउले ॥२७॥

सव्वं कहेमि रत्तो जइ वि हु अप्पावए इमाउ धणं ।

तो कोसल्लियपुव्वं साहइ रत्तो जहा देव ॥२८॥

उज्जाणे जो विलसइ विविहपयारेहि सो धुवं चोरो ।

मह दव्वं उक्खणिउं गहियं इमिणा मसाणाओ ॥२९॥

इय सुणिउं नरवइणा भणिओ आरक्खिओ जहा ।

सिग्घं आणेसु मज्झ पासे वंधेउं तं महाचोरं ॥३०॥

तेण वि तहेव विहिए तेणो जंपेइ मज्झ को दोसो ।

भणइ निव्वो तइ अत्थो गहिओ एयस्स उक्खणिउं ॥३१॥

सो भणइ देव इमिणा गहियं मम संतियं किमवि अत्थि ।

तं अप्पावसु तो हं दविणं एयस्स अप्पिस्सं ॥३२॥



बोहिदुल्लह कहा

\*

\*

\*

\*

\*

५३

रत्ना दिट्टिक्खेवे कयम्मि वज्जरइ सो वणी ।

न मए गहियं किंचि वि एयस्स जंपए तो इमं तेणो ॥३३॥

पइसमखिन्नो नरपटु तत्थाहं आसि निब्भरं सुत्तो ।

नासावंसो सवणा य कट्ठिया मह इमेणेव ॥३४॥

ता मह एसो सवणाइं अप्पिउं लेउ अप्पणो दब्बं ।

इय भणिओ सो सेट्ठी सविलक्खो ठाइ इत्तो य ॥३५॥

जइया इमस्स अप्पिहिसि सेट्ठी सवणाइयं तया दब्बं ।

ल्लिहिहिसि तं इइ भणिउंइ विसज्जिया दो वि नरवइणा ॥३६॥

तो सेट्ठी गिहपत्तो पुत्तं पन्नवइ जायवेरगो ।

जह लच्छी वच्छ गया खणेण तह जीवियं जाही ॥३७॥

जम्माउ जरा लोए जराउ मच्चू अवस्स देहीणं ।

तम्हा मच्चुमुहगया जीवा जीवंति थेवदिणे ॥३८॥

ता जइ ते परलोए गहिउं सद्धम्मसंबलं जंति ।

ता धुवमसोयणिज्जा सुहिया य हवंति तत्थ गया ॥३९॥

( सिरिलक्खणगणिरइयं सुपासणाहचरियं पा. ५२३-५२५ )

१४

## अगडदत्तस सम्माणे

(देवेन्द्रसूरिने उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा टीका में ४ थे 'असंखय' अध्ययन के छठे श्लोक के स्पष्टीकरणार्थ अगडदत्तकथा पद्य में बड़ी आकर्षक शैली में लिखी । यहाँ अगडदत्त की उन्मत्त हाथी से हुई विजयी ज्ञान देखकर राजा ने उस विजयी कुमार का कैसा सम्मान किया यह कहा है ।

देवेन्द्रसूरीनी उत्तराध्ययनसूत्रावरील सुखबोधा टीकेत ४ थ्या 'असंखय' अध्यायातील ६ व्या श्लोकाच्या स्पष्टीकरणार्थ अगडदत्तकथा पद्यात अत्यंत आकर्षक शैलीत लिहिली आहे. येथे अगडदत्ताची उन्मत्त हत्तीशी झालेली विजयी झुंज पाहून राजाने त्या विजयी कुमाराचा सत्कार कसा केला हे सांगितले आहे.)

अन्नमिदिणेसो रायनंदणो वाहियालीए मग्गेणं ।  
तुरयारूढो वच्चेड तो नयरे कलयलो जाओ ॥ १ ॥

अवि य -

किं चलिउव्व समुद्धो किं वा जल्लिओ हुयासणो घोरो ।  
किं पत्तं रिउसेन्नं तडिदंडो निवडिओ किं वा ॥ २ ॥

अगडदत्तस्स सम्मानो

\*

\*

\*

\*

\*

५५

एत्थंतरम्मि सहसा दिट्ठो कुमरेण विम्हियमणेण ।  
मयवारणो उ मत्तो निवाडियालाणवरखंभो ॥ ३ ॥

हिमिठेण वि परिचत्तो मोरतो सोडगोपुरं पत्ते ।  
सवूडमहं चलतो कालो व्व अकारण कुद्धो ॥ ४ ॥

तुट्ठपयवधरज्ज संचेणियभवणेहट्ठदेवउलो ।  
खणभेत्तेण पयंडो सो पत्तो कुमरपुरओ त्ति ॥ ५ ॥

तं तारिसरूवधरं कुमरं दट्ठूण नायरजणेहि ।  
गहिरसरेणं भणिओ ओसर ओसर करिपहाओ ॥ ६ ॥

कुमरेण वि नियतुरयं परिचइऊणं सुदवखगइगमणं ।  
हक्कारिओ गइदो इदगइदस्स सारिच्छो ॥ ७ ॥

सुणिउं कुमारसहं दंती पुज्जरियमयंजलपवाहो ।  
तुरिओ पहाविओ सो कुद्धो कालो व्व कुमरेस्स ॥ ८ ॥

कुमरेण य पाउरणं संवेल्लेऊण हिट्ठचित्तेण ।  
धावंतवारणस्स सोंडापुरओ उ पक्खित्तं ॥ ९ ॥

कोवेण धमधमंतो दंतच्छोभे य देइ सो तम्मि ।  
कुमरो वि पुट्ठभाए पहणइ दढमुट्ठिपहरेणं ॥ १० ॥

ता ओघावइ धावइ चलइ खलइ परिणओ तथा होइ ।  
परिभमइ चक्कभमणं रोसेणं धमधमंतो सो ॥ ११ ॥

अइव महंतं वेलं खेल्लावेऊण तं गयं पवरं ।  
निययवसे काऊणं आरूढो ताव खंधम्मि ॥ १२ ॥

५६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

अह तं गइंदखेडुं मणोइरं सयलनयरलोयस्सं ।  
 अंतोउरसहिणं पुलोइयं नरवरिदेणं ॥ १३ ॥

दट्टं कुमरं गयखंधसंठियं सुरवडुव सो राया ।  
 पुच्छइ नियभिच्चयणं को एसो गणनिही बालो ॥ १४ ॥

तेएणं अहिमयरो सोमत्तणएण तह य निसिनाहो ।  
 सव्वकलगमकुसलो वाई सूरु सुखो य ॥ १५ ॥

एक्केण तओ भणियं कलयायरिस्सं मंदिरे एसो ।  
 क्लपरिसमं कुणंतो दिट्ठो मे तत्थ नुरनाह ॥ १६ ॥  
 तो सो कलयायरिओ नरवइणा पुच्छिओ हरिसिएणं ।  
 को एसो वरपुरिसो गयवरसिक्खाए अइकुसलो ॥ १७ ॥

अभयं परिमग्गेउं कलयायरिएण कुमरवुत्तंतो ।  
 सविसेसं परिकहिओ नरवइणो बहुजणजुयस्स ॥ १८ ॥

तं निसुणिऊण राया नियहियए गइयतोसमावन्नो ।  
 संपेसइ पडिहारं कुमरं आणेहि मम पासं ॥ १९ ॥

गयखंधपरिट्ठियओ अह सो भणिओ य दारवालेणं ।  
 हक्कारइ नरनाहो आगच्छसु कुमर रायउलं ॥ २० ॥

रायाएसेण तओ हत्थि स्वंभमि अगलेऊणं ।  
 कुमरो ससंरुहियओ पत्तो नरनाहपासम्मि ॥ २१ ॥

जाणूकरुत्तमंगे महीए विणिहित्तु गइयविणएणं ।  
 जाव न कुणइ पणामं अवगूढो ताव सो रत्ता ॥ २२ ॥

अगडदत्तस्स सम्माणो \* \* \* \* \* ५७

तओ चित्तिं राइण। उत्तमपुरिसो एसो य जओ -  
विणओ मूलं पुरिसत्तणस्स मूलं सिरीए ववसाओ ।  
धम्मो सुहाण मूलं दप्पो मूलं विणासस्स ॥ २३ ॥

अन्नं च -

को चित्तेइ मऊरे गइं च को कुणइ रायहंसाणं ।  
को कुवल्याण गंधं विणयं च कुलप्पसूयाणं ॥ २४ ॥

अवि य -

साली भरेण तोएण जलहरा। फलभरेण तरुसिहरा ।  
विणएण य सप्पुरिसा नमंति न हु कस्स वि भएण ॥ २५ ॥

तंबोलासणसंमाणदाणपूयाइपूइओ अहियं ।  
कुमरो पसन्नहियओ उवविट्ठो रायपासम्मि ॥ २६ ॥

( उत्तराध्ययनसूत्र-सुखबोधा टीका अगडदत्तकहा -५१-७६ )



१५

## अप्यसरूवं

( उद्योतनसूरि ई. स. ८ वें शतक में हो गये । उन्होंने 'कुवलयमाला' नाम की प्रदीपं धर्मकथा लिखी है । यहाँ आत्मा का स्वरूप कैसा है यह सामान्य जनता को भी समझाने के लिए विविध उपमा देकर स्पष्ट किये हैं ।

उद्योतनसूरी हे इ. स. आठव्या शतकात होऊन गेले त्यांनी 'कुवलय-माला' नावाची प्राकृतात गद्य पद्यामध्ये प्रदीपं धर्मकथा लिहिली आहे. येथे आत्म्याचे स्वरूप कसे आहे हे सामान्य जनतेसही कळावे म्हणून विविध उपमा देऊन स्पष्ट केले आहे. )

जह किर तिलेसु तेलेलं अहवा कुसुमम्मि होइ सोरब्धं ।  
अन्नोन्नाणुगयं चिय एवं चिय देहजीवाणं ॥ १ ॥

जह देहम्मि सिणिद्धे लगइ रेणू अलंविखंओ चेय ।  
रायहोससिणिद्धे जीवे कम्मं तह च्वेय ॥ २ ॥

जह वच्चंते जीवे वच्चइ देहं पि जत्थ सो जइ ।  
 तह मुत्तं पिव कम्मं वच्चइ जीवस्स निस्साए ॥ ३ ॥

अपसरुवं

\*

\*

\*

\*

\*

५९

जह मोरो उड्डीणो वच्चइ घेतुं कलावपब्भारं ।

तह वच्चइ जीवो वि हु कम्मकलावेण परियरिओ ॥ ४ ॥

जह कोइ इयरपुरिसो रंघेऊणं सयं च तं भुंजे ।

तह जीवो वि सयं चिय काउं कम्मं सयं भुंजे ॥ ५ ॥

जह वित्थिण्णम्मि सरं गुंजावायाहओ <sup>हो</sup> भमज्ज हढो ।

तह संसारसमुदे कम्माइद्धो भमइ जीवो ॥ ६ ॥

जह वच्चइ को वि नरो नीहरिउं जरघराउ नवयम्मि ।

तह जीवो चइऊणं <sup>याउने</sup> जरदेहं <sup>हज्जसो</sup> जाइ देहम्मि ॥ ७ ॥

जह रयणं मयणसुगूहियं पि अंतोफुरंतकंतिंल्लं ।

इय कम्मरासिगूढो जीवो वि हु जाणए किंचि ॥ ८ ॥

जह दीवो वरभवणं तुंगं पिहुदीहरं पि दीवेइ ।

मल्लयसंपुडछूढो तत्तियमेत्तं पयासेइ ॥ ९ ॥

तह जीवो लक्खसमूयसियं पि देहं जणेइ सज्जीवं ।

पुण कुंयुदेहछूढो तत्तियमित्तेण <sup>संवेदो</sup> संवेदो ॥ १० ॥

जह गयणयले पवणो वृच्चंतो नेय दीसइ जणेण ।

तह जीवो वि <sup>अचरूपी सार</sup> भमतो नयणहि ने घेप्पइ भवम्मि ॥ ११ ॥

जह किरं घरम्मि दारेण पविसमाणो निरुंभई वाऊं ।

इय जीव घरे रुंभमु इंदियदाराइं पावस्स ॥ १२ ॥

६०

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

जह डज्झइ तणकट्ठं जालामालाउलेण जलणेणं ।

तह जीवस्स वि डज्झइ कम्मरयं ज्ञाणजोएण ॥ १३ ॥

बीयंकुराण व जहा कारंणोक्कंजोइ नेय नज्जंति ।

इय जीवकम्मयाण वि सहभावो णंतकालम्मि ॥ १४ ॥

जह धाऊपत्थरम्मिं समउप्पण्णम्मि जलणजोएहि ।

डहिऊण पत्थरमलं कीरइ अह निम्मलं कणयं ॥ १५ ॥

तह जीवकम्मयाणं अणाइकालम्मि ज्ञाणजोएण ।

निज्जरियकम्मकिट्ठो जीवो अह कीरए विमलो ॥ १६ ॥

जह विमलो चंदमणी शरइ जलं चंदकिरणजोएण ।

तह जीवो कम्ममलं मुंचइ लद्धण सम्मत्तं ॥ १७ ॥

जह सूरमणी जलणं मुंचइ सूरेण ताविओ संतो ।

तह जीवो वि हु नाणं पावइ तवसोसियप्पाणो ॥ १८ ॥

जह पंकलेवरहिओ जलोवरिं ठाइ लाउओ सहसा ।

तह सयलकम्ममुक्को लोगगे ठाइ जीवो वि ॥ १९ ॥

( उज्जोयणसूरिविरइया कुवलयमाला पा. ९८ )



१६

## कप्पूरमंजरी सिंगारो

•

(यायावर कुल में कविराज राजशेखर ई. स. ८८४ से ९६० तक की कालावधि में हो गया। वह महेंद्रपालराजा के आश्रय में था। वह सब भाषा में चतुर था। उसने काव्य, नाट्य, शास्त्र का गहरा अध्ययन किया। चाहु-आण कुल की अवंतीसुंदरी उसकी पत्नी थी। उसने ६ प्रबंध (अनुपलब्ध) 'बालरामायण'; 'बालभारत' (या प्रचंड पांडव) 'विद्वत्शालभंजिका' नाटक, 'कप्पूरमंजरी' प्राकृत सट्टक तथा 'काव्यमीमांसा' यह काव्यशास्त्र पर ग्रंथ, ऐसी विपुल ग्रंथरचना की। उसका कप्पूरमंजरी सट्टक सामने रखकर ही नयचंद्र ने रंभापंजरी, रुद्रदास ने चंद्रलेखा, मार्कंडेय ने विलासवती, विश्वेश्वर ने शृंगार-मंजरी और घनश्याम ने आनंद सुंदरी सट्टकों की रचना की। यहाँ दूसरी जवनिका में विचक्षणा दासी नायिका कप्पूरमंजरी का विरहाकुल प्रेममग्न राजा को देती है। तब राजा उसे पूछता है, विभ्रमलेखा रानी ने कप्पूरमंजरी को अतःपुर में लेने के बाद उसके बारे में क्या किया? तब विचक्षणा कप्पूरमंजरी का साजशृंगार कैसा किया यह कहती है और राजा रसिकता से उस पर मोहक कल्पना करता है। यहाँ कविराज राजशेखर का कल्पनाविलास नजर में आता है। इसकी भाषा महाराष्ट्री है।

६२

\*

\*

\*

\*

\*

पाययकुसुमावली

यायाकरकुलातील कविराज राजशेखर या इ. स. ८८४ ते ९६०च्या दरम्यान होऊन गेला. तो महेंद्रपालराजाच्या पदरी असून 'सर्व भाषाचतुर' होता. त्याने काव्य, नाट्य, शास्त्रांचा अभ्यास केला होता. चाहुआण घराण्यातील अवंतीसुंदरी त्याची पत्नी होती. त्याने सहा प्रबंध (अनुपलब्ध) तसेच बालरामायण, बालभारत (किंवा प्रचंड पांडव) व विद्वशालभंजिका ही नाटके, कर्पूरमंजरी हे प्राकृतातील सट्टक आणि काव्यमीमांसा हा काव्य शास्त्रावरील ग्रंथ अशी विपुल रचना केली. त्याचे कर्पूरमंजरी सट्टक समोर ठेवूनच नयचंद्राने रंभामंजरी, रुद्रदासाने चंद्रलेखा, मार्कंडेयाने विलासवती, विश्वेश्वराने शृंगारमंजरी आणि घनश्यामाने आनंदसुंदरी सट्टकांची रचना केली. येथे दुसऱ्या जवनिकेत विचक्षणा दासी नायिका कर्पूरमंजरीचे विरहाकुल प्रेमपत्र राजाकडे घेऊन येते. नंतर राजा तिला विचारतो, 'विभ्रमलेखा-राणीने कर्पूरमंजरीला अंतःपुरात नंल्यावर काय केले'? तेव्हा तिच्या कसा साजशृंगार केला हे विचक्षणा सांगते आणि त्यावर राजा रसिकतेने मोहक कलना करतो. यथे कविराज राजशेखराचे काव्यकौशल्य दिसून येते. यातील भाषा महाराष्ट्री आहे. )

राजा-अध अंतेउरं णइअ देवीए किं किदं तिस्सा ।

विचक्षणा-देव, मज्जिदा टिक्किदा भूसिदा तोसिदा अ ।

राजा-कधं विअ ।

विचक्षणा-

घणमुव्वट्टिअमंगं कुंकुभरसपंकपिजरं तिरसा ।

राजा-

रोसाणिअ फुडं ता कंचणपंचालिआरूवं ॥१॥

कप्पूरमंजरी सिंगारो \* \* \* \* ६३

विचक्षणा—

मरगअमंजरिजुअं चलणा से लंभिआ वअंसीहिं ।

राजा—

भमिअमहोमुहपंकअजुअलं ता भमरमालाहिं ॥२॥

विचक्षणा—

राअमुअपिच्छणीलं पटंसुअजुअलअं णिअत्था सा ।

राजा—

कअलीअ कंदली ता दरपवणपणोल्लिअदलग्गा ॥३॥

विचक्षणा—

तीए णिअंवफलए णिवेसिआ पोम्मराअमणिकंची ।

राजा—

कंचणसेलसिलाए ता बरिही कारिओ णट्टं ॥४॥

विचक्षणा—

दिण्णा वलआवलीउ करकमलपओट्टणालजुअलम्मि ।

राजा—

ता भणह किं ण रेहइ विवरीअं मअणतोणीरं ॥५॥

विचक्षणा—

कंठम्मि तीअ ठविओ छम्मासिअमोत्तिआणं बरहारो ।

राजा—

सेवइ ता पंतीहिं मुहअंदं तारआणिअरो ॥६॥

विचक्षणा—

उहएसुं वि सवणेसुं णिवेसिअं रअणकुंडलजुअं से ।

६४ \* \* \* \* \* पाययकुसुमावली

राजा—

ता वअणवम्महरहो दोहि वि चक्केहि चंकमिओ ॥७॥

विचक्षणा—

जच्चंजणजणिअपसाहणाइँ तीए कआइँ णअणाइँ ।

राजा—

ता अप्पिउ णवकुलअसिलीमुहो पंचवाणस्स ॥८॥

विचक्षणा—

कुडिलालआण माला णिडाललेहगसंगिणी रइआ ।

राजा—

ता ससिबिबस्सोवरि वट्टइ मज्झाउ सारंगो । ९॥

विचक्षणा—

घणसारतारणअणाइ गूढकुसुमुच्चओ चिहुरभारो ।

राजा—

ससिराहुमल्लजुज्झं ता दंसिअमेणअणाए ॥१०॥

विचक्षणा—

इअ देवीअ जहिच्छं पसाहणेहि पसाहिआ कुमरी ।

राजा—

ता केलिकाणमही विहूसिआ सुरहिलच्छीए ॥११॥

(राजशेखरविरचिता कर्पूरमंजरी सट्टकं द्वितीयम् जवनिकान्तरम्  
पा. १२-२२ )



१६

पवयणसारो

•

( भगवान् महावीर के प्रवचन का सार ऐसे कुछ बोधपर श्लोक बटुकेर, कुंदकुंदादि दिगंबर आचार्यों के ग्रन्थ से तथा श्वेतांबर आगमादि सूत्र से चूनकर यहाँ एकत्र किए हैं । दिगंबर आचार्यों की भाषा जैनशौरसेनी है और श्वेतांबर आगम की भाषा अर्द्धमागधी है ।

भगवान् महावीरांच्या प्रवचनांचा सारच असे काही बोधपर श्लोक बटुकेर, कुंदकुंदादि दिगंबर आचार्यांच्या ग्रंथातून निवडून येथे एकत्र केले आहेत, दिगंबर आचार्यांची भाषा जैनशौरसेनी असून श्वेतांबर आगमाची अर्द्धमागधी आहे. )

संबुज्झहं किं न बुज्झहं  
संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।  
नो हुवणमंति राईओ  
नो खलु पुणरावि जीवियं ॥ १ ॥

( सूत्रकृतांग १-२-१-१ )

६६

\*

\*

\*

\*

\*

पाययंकुसुमावली

जम्मं मरणेण समं संपज्जदि जुव्वणं जरासहिदं ।

लच्छी विणाससहिया इय सव्वं भंगुरं मुण्ध ॥ २ ॥

( कार्तिकेयानुप्रेक्षा-५ )

भवरण्णे जीवमिओ जो गहिओ तेण मरणसीहेण ।

असमत्था मोएउं सयणा देवा य इंदो वि ॥ ३ ॥

( जीवदयाप्रकरण १०८ )

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स चत्थि पलायणं ।

जो जाणे न मरिस्सामि सो हु कंखे सुए सिया ॥ ४ ॥

( उत्तराध्ययनसूत्र १४-२७ )

जीवियं नाभिकंखेज्जा मरणं नो वि पत्थए ।

दुहओ वि न सज्जेज्जा जीविए मरणे तहा ॥ ५ ॥

( आचारांग १-८-८-४ )

जइ वा विसगंडूसं कोई घेतूण नाम तुण्हिक्को ।

अण्णेण अदीसंतो किं नाम ताओ न व मरेज्जा ॥ ६ ॥

( सूत्रकृतांग निर्युक्ति ५२ )

धीरेण वि मरियव्वं

काउरिसेण वि अवस्स मरियव्वं ।

दुण्हं पि हु मरियव्वे

वरं खु धीरत्तणे मरिउं ॥ ७ ॥

( आतुर प्रत्याख्यान ६४ )

पवयणहारो

\*

\*

\*

\*

\*

६७

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जदि पावबुद्धीए ।

परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥ ८ ॥

( कुंदकुंदाचार्य-अनुप्रेक्षा-३० )

किच्चा परस्स णिदं

जो अप्पाणं ठवेदु मिच्छेज्ज ।

सो इच्छदि आरोग्गं

परम्मि कडुओसहे पिए ॥ ९ ॥

( भगवती आराधना ३७१ )

कसिणं पि जो इमं लोयं

पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स ।

तेणावि से न संतुस्से

इइ दुप्परए इमे आया ॥ १० ॥

( उत्तराध्ययनमूत्र ८-१६ )

सक्का वण्ही निवारेउं वारिणा जलिओ बहिं ।

सव्वोयहीजलेणावि मोहग्गी दुत्तिवारिओ ॥ ११ ॥

( ऋषिभाषितानि ३-१० )

नाणंकुसेण रुंधह मणहत्थि उप्पहेण वच्चंतं ।

मा उप्पहपडिवन्नो सीलारामं विणासिज्जा ॥ १२ ॥

( नानावृत्तक प्रकरण ८१ )

जहा कालो इंगालो दुद्धद्वोओ न पंडुरो होइ ।

तह पावकम्ममइला उदएण न निम्मला हुंति ॥ १३ ॥

( नानावृत्तकप्रकरण-५० )

६८ \* \* \* \* \* पाययकुसुमावली

जीवे न हणइ अलियं न जंपए चोरियं पि न करेइ ।  
परदारं पि न वच्चए घरे पि गंगादहो तस्स ॥१४॥

(नानावृत्तकप्रकरण ५८)

सो पंडिओ त्ति भण्णइ

जेण सया नेय खंडियं सीलं ।

सो सूरु वीरहडो

इंदियरिउनिज्जिया जेण ॥१५॥

(जीवदयाप्रकरण १०५)

सो सव्वस्स वि पुज्जो

सव्वस्स वि हिययआसमो होइ ।

जो देसकालजुत्तं

पियवयणं जाणए वुत्तुं ॥१६॥

(जीवदयाप्रकरण ११४)

जदि पडदि दीवहत्थो अवडे

किं कुणइ तस्स सो दीवो ।

जदि सिक्खिऊण अणयं करेदि

किं तस्स सिक्खाफलं ॥१७॥

(मूलाचार-समयसाराधिकाराः १५)

सुचिरं पि अच्छमाणो वेरुलिओ कायमणिओमीसे ।

न य उवेइ कायभावं पाहन्नगुणेण नियएण ॥१८॥

(ओघनिर्युक्ति ७७२)



पथयणसारो

\* \* \* \* \*

६९

जहा खरो चंदणभारवाही

भारस्स भागी न हु चंदणस्स ।

एवं खु नाणी चरणेण हीणी

नाणस्स भागी न हु सोग्गईए ॥ १९ ॥

( आवश्यकनिर्युक्ति १०० )

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।

एयमग्गमणुपत्ता जीवा गच्छंति सोग्गइं ॥ २० ॥

( उत्तराध्ययनसूत्र-२८-३ )

अंबत्तणेण जीहाइ कूइया होइ खीरमुदगम्मि ।

हंसो मोत्तूण जलं आपियइ पयं तह मुसीसो ॥ २१ ॥

( बृहत्कल्पभाष्य ३४७ )

जं कल्लं कायव्वं अज्जं चिय तं करेह तुरमाणा ।

बहुविग्धो य मुहुत्तो मा अवरणं पडिक्खेह ॥ २२ ॥

( जीवदयाप्रकरण ११५ )

लव्भंति सुंदरं चिय सव्वो घोसेइ अप्पणो पणियं ।

केइएण वि धित्तव्वं सुंदरं सुपरिक्खित्तं काउं ॥ २३ ॥

( नानावृत्तकप्रकरण ६ )

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेमु भमइ जो चेदा ।

सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४ ॥

( समयसार २३६ )

७० \* \* \* \* \* पाययकसुमावली

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहृदुक्खो पसंसणिदसमो ।

समलोद्वुक्कंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ २५ ॥

( प्रवचनसार ३-४१ )

जह दीवो दीवसयं पइप्पए

सो य दिप्पए दीवो

दीवसमा आयरिया

अप्पं च परं च दीवन्ति ॥ २६ ॥

( उत्तराध्ययननिर्युक्ति )

जहा निसंते तवणच्चिमाली

पभासइ केवलभारहं तु ।

एवायरिओ सुयसीलबुद्धीए

विरायइ सुरमज्जे व इंदो ॥ २७ ॥

( दशवैकालिकसूत्र ९-१-१४ )

सुई जहा समुत्ता ण णस्सदि दु पमाददोसेण ।

एवं समुत्तपुरिसो ण णस्सदि तहा पमाददोसेण ॥ २८ ॥

( मूलाचार-समयसाराधिकार ९८० )

रागो दोसो मोहो इंदियचोरा य उज्जदा णिच्चं ।

ण चयन्ति पहेसेदुं सप्पुरिससुरक्खिदं णयरं ॥ २९ ॥

( मूलाचार-अनगारभावनाधिकारः ११२ )

पवयणसारो

\*

\*

\*

\*

\*

७१

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।

देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥३०॥

(दशवैकालिकसूत्र १-१)

सव्वजगस्स हिदकरो धम्मो

तित्थंकरेहि अक्खादो ।

घण्णा तं पडिवण्णा

विसुद्धमणसा जगे मणुया ॥३१॥

(मूलाचार-द्वादशानुप्रेक्षाधिकारः ६०)



सम्पूर्ण

# कठिन शब्दार्थ

## १. कविलमुणिचरियं



बहुमआं—( बहुमतः ) अत्यंत अभिप्रेत ( मोठा सामान्य केला गेलेला )

वित्ति—(वृत्ति) जीविका, निर्वाह साधन ( उपजीविकेचे साधन )

उवकण्ण—(उप+कलृ) करना ( करणं )

खुड्डुल्लय—(दे.) वचन ( बालन )

कालगआं—(कालगतः) मर गया ( मरण पावला )

मरुगय—(मरुक्) ब्राह्मण.

आस—(अश्व) घोडा.

वच्च—(वज्र) जाना ( जाणं )

इद्धि—, ऋद्धि) वैभव, ऐश्वर्य.

अहिज्ज—(अघ्रि+ई) पढना ( अभ्यास करणे )

निव्विसेस—(निर्विशेष) विशेषरहित, समान.

पसाय—(प्रसाद) कृपा

निपरिग्रहतणओ—( नि+परिग्रहान् ) परिग्रहरहित होने से ( अपरिग्रही  
(अपरिग्रही असत्यामुळे)

संपज्ज—(सं+पद्) संपन्न होना, सिद्ध होना, मिलना ( प्राप्त होणे, साध्य  
होणे )

तत्थ—(प्रार्थय्) प्रार्थना करना ( विनवणी करणे )

इव्वम—(इव्व्य) धनी ( श्रीमंत )

पओयण—(प्रयोजन) प्रयोजन, कारण

जिम—(जिम्, भुज्) भोजन करना ( जेवणे )

( ७५ )

दासचेटी—(दासचेटी) दासी (मोलकरीण)

परिवेस—(परि+विष्) परामना (वाढणे)

मह—(मह) उत्सव

अरइ—(अरति) वेचैनी (दुःख)

विगुप्प—( वि+गोपय् ) फजिहत या तिरस्कार करना ( फजिती किंवा तिरस्कार करणे )

अधिइ—(अवृत्ति) धीरज का अभाव ( धैर्य गलित )

अप्पहाय—अप्रभात) बड़ी सबेर (पहाट)

वद्धाव—(वर्धय वर्धापय्) वर्धाई देना ( अभ्युदयाची इच्छा करणे )

मास—(माष) परिमाणविशेष, मासा.

आरक्खियपुरिस—(आरक्षित पुरुष) कोटवाल (कोतवाल)

डिभरूव—(डिम्बरूप) बालक

परिणयण—(परिणयन) विवाह

पज्जत—(पर्याप्त) काफी (पुरे)

परिभाव—(परि+भावय्) पर्यालोचन करना ( चिंतन करणे )

उवरम—(उप+रम्) निवृत्त होना, विरत होना (विरत होणे)

अवहीर—(अव+धीरय्) अवज्ञा करना (अवज्ञा करणे)

अवगण—(अव+गणय्) अनादर करना (अनादर करणे)

अवमण्ण—(अव+मन्) तिरस्कार करना ( तिरस्कार करणे )

इयर—(इतर) सामान्य

सर—(स्मृ) स्मरण करना (स्मरण करणे)

आयारभण्डग—(आचारभण्डक) भुनि उपकरण

निट्टिय—(निष्ठित) निष्पन्न, सिद्ध.

धम्मलाभ—(धर्म लाभ)' धर्म लाभ हो ऐसा आशीष ( धर्मलाभ होवी असा आशीर्वाद



## २. कालगायरियकहा

सरिस-(सदृश) समान

सुत्ति-(शुक्ति) सीप (शिपली)

चूयपायवे-(च्युतपादप) आम्रवृक्ष

देसणा-(देशना) उपदेश

सुयणाण-(श्रुतज्ञान) अंग, उपांगादि धर्मग्रंथ.

गीयत्य-(गीतार्थ) ज्ञानी जैन मुनि

सूरि-(सूरि) आचार्य

इत्थीलोलो-(स्त्रीलोलुप) स्त्रीलोलुप (स्त्रीलंपट)

विहल-(विफल) फलरहित

वम्मह-(वम्मथ) कामदेव, मदन

कामग्गहगहिल्ल-(कामग्रहप्रसित) कामपिशाच से प्रसित (कामपिशाचाने क्षपाटलेला)

ओरोह-(अवरोध) अंतःपुर

छूढ-(क्षिप्त) क्षिप्त (टाकले गेले)

लिगिगी-(लिंगिणी) साध्वी

मुस-मुष् चोरी करना (लुबाडणे)

मुय-(मुञ्च) मुक्त करना (सोडणे)

मिच्छा-(मिथ्या) मिथ्या, व्यर्थ होना, (फुकट जाणे)

कइयव-(कैतव) कपट, दंभ.

झंप-(आ+च्छादय) झांपना, आच्छादन करना (झाकून टाकण)

रोह-(रुद्ध) घेरना (बेडा देणे)

रुहिर-(रुधिर) रक्त

तज्ज-तर्जय तर्जन करना, भर्त्सना करना (निभंत्सना करणे)

निद्धाड-(निर्धारय) बाहर निकालना (हाकलून देणे)

सुज्झ-(शुद्ध) शुद्ध होना (शुद्ध होणे)

\*\*\*



## ३. विवागदारुणो मायाचारो

\* \* \*

सुया—(सुता) कन्या

अहाकप्प—(यथा कल्प) शास्त्रनियम के अनुसार (शास्त्रनियमानुसार)

सुय—(श्रुत) ज्ञान

गणिणी—(गणिनी) प्रवर्तिनी, प्रमुख साध्वी

माइकुल—(जातिकुल) पीहर, मायका (माहेर)

ऊसासिय—(उच्छ्वासित) उल्लसित, पुलकित.

वियंभ—(वि+जृम्भ) विकसना (पसरणे)

सस्स—(शस्व) धान्य.

पडिस्सय—(प्रतिश्रय) जैन साधुओं को रहने का स्थान, उपाश्रय.

पज्जुवास—(पशुप+आस) सेवा करना, भक्ति करना, (सेवा करना (सेवा करने, भवती करने)

सेल—(शैल) पहाड (पर्वत)

बज्जासणि—(वज्राशनि) वज्र

चारय—(दे.) कैदखाना, कारावास

पओस—(प्रद्वेष) द्वेष.

विवाअ—(विपाक) परिणाम.

वियारिय—(विकृत) विकृत

संपाइय—(संपादित) साधित, प्राप्त.

(७८)

बाबाय- (व्या+पादय्) मार डालना (ठार करणे)

आसीविस- (आशी विष) जहरीला माँप (विषारी माँप)

पओससमय- (प्रदोषसमय) सन्ध्यासमय.

उवणी- (उप+नी) समीप में लाना, अर्पण करना (घेऊन येणे, अर्पण करणे)

अवणी- (अप+नी) दूर करना, हटाना (दूर करणे, काढणे)

धरणि माउल्लिग- (धरणिमातुल्लिग) मिट्टी का बनाया बीजोरे के फल के  
आकार का घट्टण (म्हाळुंगाच्या आकाराचे घडधावरील  
मातीचे श्राकण)

दुवारघट्टण- (द्वारघट्टन) श्राकण.

सज्जस- (साध्यस) भय.

नियडि- (निकृति) माया, कपट.

सीइय- (सन्न) खिन्न, परिश्रान्त.

उयवत्त- (उद् + वृत्) चलना-फिरना (फिरणे)

परिवत्त- (परि+वर्तय्) पलटाना, फिराणा (परिध्रमण करणे.)

अवसा- (अवशा) आलम्बन या सहारा रहित (निराधार)

चिक्खणीय- (दे.) सहनशील

सोहम्मकप्प- (सौधर्मकल्प) सौधर्म नाम का पहला स्वर्ग (सौधर्म नावाचा  
पहिला स्वर्ग)रयणप्रभा- (रत्नप्रभा) रत्नप्रभा नाम की पहली नरकभूमि (रत्नप्रभा  
नावाची पहिली नरकभूमी)

## ४. कमलाइं कद्दमे संभवन्ति

\*卐\*

कद्दम—(कद्दम) कीचड़ (चिखल)

गणिया—(गणिका) (वेष्ट्या)

खेइय—(खेदित) पीड़ित, व्यथित.

तिगिच्छग—(चिकित्सक) वैद्य

वाहि—(व्याधि) व्याधि, रोग

गालनोवाय—(गालनोपाय) (गर्भ) गिरवाने का उपाय (गर्भपातका उपाय)

गवेस—(गवेष्य) खोजना (शोधणे)

निरामय—(निरामय) रोगरहित, निरोगी

वाघाय—(व्याघात) प्रतिबन्ध (अडथळा)

जायपरिच्चाय—(जातपरित्याग) संतान त्याग

उज्ज—(उज्ज) त्याग करना (त्याग करणे, सोडणे)

राय, राट, रत्ति—(रात्रि) रात (रात्र)

मुद्दा—(मुद्रा) मुद्रिका, अंगूठी (आंगठी)

डहरिया (का)—(दे.) छोटी (लहान)

पञ्चूस—(प्रत्यूष) सुबह (सकाळ)

गिह—(गृह) मकान (घर)

जय—(घृत) घृत

(८०)

पञ्जो, पञ्ज- (प्र+युज्) प्रवृत्त या प्रेरणा करना (प्रवृत्त करणे)

सवहसाविया- (शपथ शापिता) सौगन्धपूर्वक (शपथ घालून)

दिसाजत्ता- (दिशायात्रा) देशाटन (प्रवास)

सारक्ख- (सं+रक्ष्) अच्छी तरह रक्षण करना (चांगल्यारीतीने सांभाळणे)

पवत्तिणि- (प्रवर्तिनी) प्रमुख साध्वी

अनाण, अन्नाण- (अज्ञान) अज्ञान, अजाणता

अज्जा- (आर्या) साध्वी

असंकिय- (अशङ्कित) शंकारहित

अभिक्ख- (अभीक्षण) बारबार (पुनः पुन्हा)

परियंद- (परि+वन्द) वन्दन या स्तुति करना (वन्दन किंवा स्तुती करणे)

पित्तिज्ज, पित्तिय- (पितृव्य) पिता का भाई, चाचा (काका)

उदाहु- (उताहां) अथवा

विणोयणत्थं- (विनादनार्थम्) कौतुक करने के लिए (कौतुक करण्माकरिता)

संवेग- संवेग) संसार से विरक्ति और धर्म पर श्रद्धा (संसारपासून  
विरक्ती आणि धर्माविषयी श्रद्धा)

पत्थ- (पथ्य) हितकारक

तुरियं- (त्वरितं) जल्दी (लगेच)

तपोवहाण- (तपोधान) तपाचरण

विगिट्ट- (व्युत्कृष्ट) उत्कृष्ट

खव- (क्षपथ्) नाश करना, क्षय करना (क्षय करणे)

साणुक्कोस- (सानुक्रोश) दयालु (दयाळू)



## ५. कुलवहु



- ङाया—(जाया) पत्नी  
 दाहिणाणिल—(दक्षिणानिल) दक्षिणवायु  
 चच्चरी—(चर्चरी) गानेवाली टोली (गाणान्यांचे पथक)  
 महसमय—(मधुसमय) वसंतऋतु का समय (वसंतऋतूचा समय)  
 दीहिया—(दीर्घिका) बापी, जलाशय  
 अणुणी—(अनु+नी) अनुनय करना (अनुनय करणे)  
 उत्कडया—(उत्कटता) उत्कटता, तीव्रता  
 अब्भत्थय—(अभ्यस्तक) अभ्यास (सवय)  
 गामधम्म—(ग्रामधर्म) विषयाभिलाषा, विषयप्रवृत्ति  
 विसमसर—(विसमशर) मदन.  
 बोल—(गम्) गुजरना (जाणे)  
 निचुड (डु) (दे.) निर्दय, बाहर निकला हुआ (बाहेर गेलेला)  
 अवही—(अवधि) अवधी.  
 झूर—(क्षि) झुरना (झुरणे)  
 समीहिय—(समीहित) इच्छित  
 सोहन—(शोधन) सफाई करना (साफ करणे, पाखडणे)  
 रन्धण—(रन्धन) रान्धना (स्वयंपाक करणे)  
 उवणय—(उपनय) दृष्टांत.



## ६. थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जा



दुल्लह- (आल्लह) अधिल्लह, ऊपर चढ़ा हुआ (आल्लह, वर चढ़लेला)

पव्वय- (प्र+व्रज) दीक्षा लेना (दीक्षा घेणे)

आवाहा- (आवाधा) बाधा, त्रास.

विवाहा- (विवाधा) दुःख, बाधा.

दुरइक्कमणिज्जा- (दुरतिक्रमणीय) निवारण करने के लिए अत्यंत कठिन  
(निवारण करण्यास अत्यंत कठिण)

अविरह- ( अविरति ) पाप कर्म से अनिवृत्ति ( पापी कर्मापासून निवृत्त  
न होणे)

निक्खमण- (निष्क्रमण) दीक्षा ग्रहण.

यज- (यत्) यत्न करना (यत्न करणे)

घड- (घट्) परिश्रम करना (परिश्रम करणे)

पमाय- (प्र+मद्) प्रमाद करना, बेदरकारी करना ( प्रमाद करणे, निष्का-  
लजी राहणे)

लोअ- (लोच) लुंचन, केशों का उत्पाटन (केश उदटणे, केश लोच)

## ७. दमयंती सयंवरो

नय—(नय) न्याय, नीति.

चाय—(त्याग) त्याग

कुक्खि—(कुक्षि) उदर (कूख)

सरह—(शरभ) अष्टपाद भयानक शरभ नाम का पशु कि जो हाती या शेर से भी सामर्थ्यशाली होता है । ( हत्ती किंवा सिंहाहूनही अधिक शक्तिशाली असे शरभ नावाचे आठ पायांचे रानटी जनावर )

जह—(यूथ) समूह (कळप)

तरणि—(तरणि) सूर्य

सिरिवच्छ—(श्रीवत्स) तीर्थकरादि महापुरुष के वक्षस्थळ पर चार दल के कमल के समान वाल का शुभ चिह्न ( तीर्थकरादि महापुरुषाच्या छातीवर चार पाकळ्या युक्त कमळासारखे असलेले केसांचे शुभ चिन्ह )

दम (दमय्) दमन करना (दमन करणे)

सियपक्ख—(सितपक्ष) शुक्लपक्ष.

कलोवज्जाय—(कलाउपाध्याय) कलाओं का अध्यापक (कलांचा अध्यापक)

आयंस—(आदर्श) दर्पण (आरसा)

संकंत—(संक्रान्त) संक्रांत होना, आत्मसात होना (आत्मसात होणे)

असरिस—(असदृश) असामान्य

सुवत्त—(सुदृत्त) उत्तम प्रकार वाले (उत्तम आकार असलेले)

बंधुर—(बंधुर) मोहक, सुंदर.

दुकूल—(दुकूल) रेशमी वस्त्र.

महिनाह—(महिनाथ) पृथिवीपति, राजा.

चक्खुविक्षेव—(चक्षुर्विक्षेप) नेत्रकटाक्ष.

परवंचणवसणिणो—(परवञ्चना व्यसनशीलाः) परवंचना करने का जिनका अभ्यास है वे ( दुसऱ्याची फसवणूक करण्याची सवय असलेले )

(८४)

पार--(शक्) सकना, करने में समर्थ होना ( शक्य होणे )

केदार--(केदार) क्षेत्र,

कुंकुम--(कुंकुम) केशर,

तुसार--(तुषार) हिम, बर्फ.

कोस--(कोश) कोश (द्रव्यकोश, द्रव्य भांडार)

मयरद्वय--(मकरध्वज) जिसके ध्वज पर मकर का चिह्न है वह मदन  
( ज्याच्या ध्वजावर मकराचे चिन्ह आहे तो मदन )

कविजला--( कपिजला ) कपिजला नाम की दूसरी सखी दामी, जिसने  
वरमाला तैयार की थी । ( जिने वरमाला तयार केली ती कपि-  
जला नावाची दुसरी सखी दामी )

अपपडिवयण--(अप्रतिवचन) जवाब न देना (उत्तर न देणे)

पडिसेह--(प्रतिषेध) निषेध.

कलयंठ--(कलकण्ठ) मधुर स्वरयुक्त, कोकिला.

करवाल--(करवाल) खड्ग (तलवार)

नियर--(निकर) समूह.

फुट--(स्फुट) फुटना ( फुटणे )

भेसण--( भीषण ) भयानक.

वेव--( वेप् ) कंपना ( कापणे, थरथरणे )

ईसि--( ईषत् ) किंचित्.

तरंगिणी--( तरङ्गिणी ) जिसमें तरंग हो वह, नदी.

परिस्संत--( परिश्रान्त ) श्रान्त ( दर्पण )

किच्चिरं--( कियत् चिरं ) कितना काल ( कितनी बेळ )

सहस्सनयण--( सहस्र नयन ) जिसके सहस्र आँख हो वह, इंद्र.

पच्चाएस--( प्रत्यादेश ) निराकरण.

कंदल--( कन्दल ) लताविशेष, अंकुर.





## ८. पदुमावदी उदअणस्स दिण्णा

\* \* \*

कंदुअ--( कन्दुक ) चंडू

कण्णचूलिआ--( कर्णचूलिका ) कर्णफूल.

राअ--( राग ) लाल, प्रेम.

णिब्बत्तीअदु-- ( निर्वर्त्यताम्-परिसमाप्यताम् ) उपभोग करे ( उपभोग दे  
( घालबू दे )

अभिदो--( अभितः )

साणुक्कोस--( सानुक्रोश ) दया, कृपा

समुदाआरो--( समुदाचारः ) मर्यादा ( चाल रीत )

सुलहपय्यवत्थाणाणि--( सुलभानि पर्यवस्थानानि सुलभं पर्यवस्थानं येषां तानि )  
सुलभता से पूर्वस्थिति पर आनेवाली ( सहजपणे पूर्व-  
स्थितिवर येणारी )

## ९. मुखत्तणस्स पाहुडो

卐卐卐

कंघुइ--( कञ्चुकिन् ) अन्तःपुर का प्रतिहारी ( अंतःपुरातील द्वारपाल )

दाई--( दे. ) दाई. धत्ती--( धात्री ) दाई.

णिहालण--( निभालन ) निरीक्षण, अवलोकन

अभिदो--( अभितः ) चारों ओर, समन्तान् ( चोहोकोडे )

आविट्टु--( आविष्ट ) व्याप्त, आवृत्त

बाह्--( बाध् ) विरोध करना, पीड़ा करना ( विरोध करण, पीड़ा देणे )

(८६)

उवालिह--( उपा+लभ् ) उलाहना देना ( भर्त्सना करण )

तुरुष्क--( तुरुष्क ) तुरुष्क.

वीसकद्--( विश्वकद् मृगयाकुशलः शुनकः ) मृग या कुशल कुत्ता ( शिकारी कुत्रा )

गोमाउ--( गोमायु ) शृगाल, गीदड़ ( कोल्हा, गिधाड़ )

रोड़--( रोगिन ) बिमार ( रोगी )

कुक्कुर--( कुक्कुर ) कुत्ता ( कुत्रा )

पच्चार--( दे. ) बुलाना (पाचारण करणे बोलावणे )

ठक्क--( दे. ) रखना ( ठेवणे )

घट्ट--( भ्रंश ) भ्रष्ट होना ( पड़णे )

विद्वन्ती--( विद्वान्ति ) भ्रान्ती ( भ्रम )

चणअ--( चणक ) धान्यविशेष, मसुर.]

( चणकहिमाम्बु-चणकगुल्फेषु आस्तीर्णैर्वस्त्रादिभिः संभृत्य तुषारोदकमित्यर्थः ।  
एतेन अतिशैत्यं द्योत्यते । )

विअईल--( विचकिल ) मल्लिका

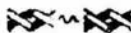
( अवयवेषु पुलकमुद्रा । नयनयोर्मुकुलीभावः गात्रे सात्विक  
भावात् स्वेदसमृद्धिर्मनसि चाखण्डसच्चिदानन्दनपरब्रह्मसाक्षा-  
त्कारो भवतीति भावः । )

तुण्ह--( तूष्णीम् ) मौन, चुपकी ( मौन, उगीच )

ऊणत्तणं--( ऊनत्वं ) न्यूनत्व ] ( कमीपणा )

गल्लूरणादिअं--( गल्लूरणादिकं व्याघ्रस्य भीषणगम्भीरकण्ठध्वनिर्गल्लूरण-  
शब्दार्थः । ( बाध की भयंकर गर्जना ( बाधाची भयंकर  
डरकाली )

किदग्ग--( कृतघ्न ) ( कृतघ्न.



## १०. नमुक्कारप्पहावो



पूयारूह--( पूजाहं ) पूजा का पात्र ( पूजेस पात्र )

चरण--( चरण ) आचरण

सुय--( श्रुत ) श्रुत, आगम, सिद्धान्तशास्त्र.

सर--( स्मर ) स्मरना ( स्मरणे )

सिवपह--( शिवपथ ) मोक्षमार्ग.

अवज्झ--( अवध्य ) अवध्य, न मरने वाला ( न मरणारे )

मायंड--( मार्तण्ड ) सूर्य.

पक्खिपहू--( पक्षी प्रभु ) पक्षीराज गण्ड.

तक्कर--( तस्कर ) चोर.

हरि--( हरि ) शेर ( सिंह )

करि--( करिन् ) हाथी ( हत्ती )

विसहर--( विषधर ) सर्प.

दुरिय--( दुरित ) मंकट.

दो घट्ट, दोगघट्ट--( दे. ) हाथी, हत्ती.

घट्टय, घट्ट- ( घट्ट् ) आहत करना, ( हल्ला करणे )

चउदमपुव्व--( चतुर्दशपूर्व ) चौदह पूर्व ग्रंथ कि जिनमें जैनदर्शन समाविष्ट है  
( ज्यामध्ये जैनदर्शन समाविष्ट आहे असे चौदा पूर्व ग्रंथ )

मुमर--'मुमर ) स्मरण करना ( स्मरण करणे )

## ११. वज्जालगं

### दीण उजा

पवन्न--(प्रपन्न) लीन होना ( गढ़ून जाणे )  
 कुलक्कम--( कुलक्रम ) कुलक्रम, कुलपरंपरा.  
 तूल--( तूल ) रुई, रुआ ( कापूस )  
 उदहि--( उदधि ) मागर.  
 ले--( ला ) लेना ( घेणे )  
 जलहर-- जलधर मेघ.

### सिहवज्जा

कुरंगी--( कुरङ्गी ) हरिणी.  
 मड्ढ--( मृगेन्द्र ) अनराज, शेर ( सिंह )  
 सोंडीर--( शौण्डीर ) महानता .  
 मडह--( दे. ) छोटा ( लहान  
 गंजण--( गञ्जन ) कलंक, अपमान.

### चंदणदज्जा

सुसिय--( शोषित ) शुष्क ( बाळलेले )  
 निहस--( नि+घृष् ) घिसना ( घासणे )  
 महमह, मघमघ-- प्र+भु. पैलना, गन्ध का पसरना ( दरबळ, घमघमाट  
 सुटणे )  
 विलक्ख--( विलक्ष ) लज्जित.  
 परसु--( परशु ) परशु ( कुन्हाड  
 सन्नय--( संनत ) विनम्र, नत.  
 दुजीह, दुज्जीह--( द्विजिह्वा ) सांप ( सर्प )  
 भेल्ल, मिल्ल--( मुच ) छोडना, त्यागना ( सोडणे, त्याग करणे )

\*\*\*

## १२. उज्जलसीलो दहमुहो



गायार—(गाकार) तट, दुर्ग.

भड--(भट) योद्धा.

चैद्य—(चैत्य) प्रतिमा, मूर्ति.

बल--(बल) सेना.

निसाम--(नि+श्रु) सुनना (ऐकणे)

डह--(दह्) जलना (जळणे)

पहुत्त--बहुत (पुष्कळ)

कराल--(कराल) विकराल, भयंकर.

महपगव्वभ--(मतिप्रगल्भ) अत्यंत बुद्धिमान.

विसज्ज--भोजना (पाठवणे)

मच्छिट्ठ--(उच्छिष्ट) जूठा (उष्टे)

उग्गमण--कामजनक

पत्थिव--(पाथिव) राजा.

मुण--(दे.) जानना (जाणणे)



## १३. बोहिदुल्लकहा

~५~

दविण्डु—(द्रव्यशृङ्ख) धनसंपन्न.

मंत—(मन्त्रय) गुप्त परामर्श करना; मसलहत करना (गुप्त बिचारविनिमय  
किवा मसलत करणे)

पेयवमे—(प्रेतवन) स्मशान.

रहपरास्त—(रहप्रदेश) गुप्तस्थान.

आवद्—(आपद्) आपदा (संकट)

गत्त, गड्डु—(गत्त) गडहा, गड्ढा (खड्डा)

कप्पडिय—(कापंटिक) भीखमंगा (भिकारी)

खिड्डय, खेड्डय—(खेल) बहाना, छल.

निरुंभ—(नि+रुध्) निरोध करना (रोक्कणे)

सवण—(श्रवण) कर्ण.

विच्च—(वि+अय्) ध्यय करना (वेचणे)

इत्तो, इओ—(इतस्) इससे (येथून)

झडत्ति—(झटिति) शीघ्र, जल्दी.

अगुरु—(अगुरु) चंदन.

निवसण—(निवसण) बस्त्र.

मुट्टम—(सूक्ष्म) सूक्ष्म, बारीक (झिरझिरित)

लुय—(लून) काटा हुआ, छिन्न (कापलेले)

पाउल—(पापकुल) हलके कुल का (हलक्या कुलातील)

हिट्ट, हट्ट—(हृष्ट) हर्षयुक्त, आनन्दित.

कुकुम्—(कुडकुम्) केशर

(११)

चरड-(चरट) लुटेरे की एक जाति (एक प्रकार का लुटारा)

विउस-(विद्वस्) विज्ञ, पण्डित.

भंगी-(भङ्ग) प्रकार

कोसल्लिय-(कौशलिक) भेंट, उपहार (नजराणा)

तेण-(स्तेन) चोर.

वज्ज र-(कथय्) कहना (सांगणे)

विसज्ज-(वि+सृज्) विदा करना (निरोप देने)

पन्नव-(प्र+ज्ञापय्) उपदेश करना (उपदेश करने)

देहि-(देहिन्) जीव, प्राणी.

थेव, थोव-(स्तोक) अल्प, थोड़ा.

संबल-(शम्बल) पायेय, रास्ते में खाने का भोजन (शिदोरी)



## १४. अगडदत्तस्स सम्माणो

\* \* \*

वीहिमाली-(वाघ्माली) अश्व खेलने की जगह (घोडमैदान)

तुरय-(तुरग) अश्व, घोड़ा.

चल-(चल्) काँपना, हिलना (कापणे, हलणे, खवळणे)

हुयासण-(हुताशन) अग्नि.

तडिदंड-(तडिदण्ड) विद्युद्दंड । विजेचा लोळ)

मयवारण-(मदवारण) मदबाला हाथी (मद सरत असलेला हत्ती)

आलाण-(आलान) बंधा हुआ (बाँधलेला)

मठ, मँठ-(दे.) महावत ( माइत )

(१२)

- सबडंमुह, सबडंहुत्त—(दे.) अभिमुख, संमुख (समोर, पुढे)  
 ओसर—(अप+सृ) पीछे हटना, सरकना (मागे होणे, तूर होणे)  
 वंति—(दन्तिन्) हाथी (हत्ती)  
 पञ्जरिय—(प्रक्षरित) टपका हुआ (वाहत असलेला)  
 संवेल्ला—(संवेष्ट) लपेटना (गुंडाळणे)  
 धमधम—(धमधमाय्) 'धम् धम्' आवाज करना. (धुमसण)  
 छोभ, छोह—(दे.) प्रहार.  
 खल—(खल) पड़ना, गिरना (पडणे)  
 सुरइ—(सुरपति) देवेंद्र.  
 भिच्च—(भृत्य) सेवक.  
 अहिमयर—(अ-हिमकर) सूर्य.  
 आगम—(आगम) धर्मशास्त्र, सिद्धान्तशास्त्र  
 वाई—(वादी) वाक्पटु.  
 गरुय—(गरुक) अत्यंत.  
 जाणु—(जानु) घोंटू, घोटना (गुढगा)  
 उत्तमंग, उत्तिमंग—(उत्तमाङ्ग) मस्तक.  
 विणिहा—(विति+धा) स्थापन करना (ढेवणे.)  
 अवगूढ—(अवगूढ) आलिंगित  
 दप्प—(दर्प) अहंकार  
 कुवलय—(कुवलय) कमल  
 तोय—(तोय) जल (पाणी)





## १५. अप्सररूवं



सोरुम्भ- (सीरम्भ) सुगंध.

रेणु- (रेणु) रज, धूली, (धूळ)

निस्सा- (निश्वा) आलम्बन, महारा, आश्रय.

कलाब- (कलाप) समूह.

परियरिय- (परिवृत्त) परिवेष्टित (समवेत)

रंध- (रंध, राधय्) रांधना, पकाना स्वयंपाक करणे

हृढ- (हृढ) जल में होनेवाली वनस्पति-विशेष ( पाण्यातील हृढ नावाचे रोपटे)

नीहर- (निर्+स्) बाहर निकलना बाहेर पडणे

मयण- (मदन) मोम (मेन)

मल्लय- (मल्लक) पात्र-विशेष (भांडे)

समूससिय- (समुच्छ्वसित) निश्वास.

कुणु- (कुणु) एक क्षुद्र जन्तु, त्रीन्द्रिय जन्तु की एक जाति ( कुणु नावाचा तीन इंद्रिये असणारा कीटक)

किट्ट- (किट्ट) धातु का मल, मैल (मळ)

लाउ, अलाउ- (अलाबु) तुम्बी फल, तुम्बा (भोपळा)



## १६. कप्पूरमंजरीए सिंगारो

-॥-

- मज्ज- (मज्ज) स्नान करना (स्नान करणे)  
 टिक्किद- (दे.) तिलक विभूषित (तिलक लावला)  
 टिक्क- (दे.) तिलक.  
 पिज्जर- (पिज्जर) पीतरक्त वर्ण (घासून स्वच्छ केलेले)  
 रोसाणिअ- (मृष्ट) शुद्ध किया हुआ, मार्जित  
 रोसाण- (मृज) मार्जन करना, शुद्ध करना (स्वच्छ करणे)  
 मुअ- (शुक) शुक (पोपट)  
 कंचि- (काञ्चि) कटीमेखला (मासपट्टा)  
 बरिही, बरहि- (बर्हिन्) मोर.  
 पओट्ट, पउट्ट- (प्रकोष्ठ) हाथ का पट्टा (मनगट)  
 तोणी- (तूणीर) शरधि (बाणाचा भाता)  
 चंकम- (चङ्क्रम) चलना-फिरना (चालणे)  
 अच्चंजण- (जात्यञ्जन) उत्तम अंजन वाला  
 सिलीमुह- (शिलीमुख) तीर, शर.  
 कुडिलालअ- (कुटिलालक) घुंघराले बाल (कुरळे केस)  
 णिडाल- (ललाट) भाल (कपाल)  
 धणसार- (धनसार) कपूर (कापूर)  
 तार- (तार) चमकता, देदीप्यमान (चमकदार)  
 चिहुरभार- (चिकुरभार) केदा संभार.  
 एणणअणा- (एणनयना) मृगनयना (हरिणाक्षी)  
 एण- (एण) हरिण.  
 सुरहिलुच्छी- (सुरभिलक्ष्मी) वसंत ऋतुका वसंत श्री

\*\*\*

## १७. प्रवचनसार

---

सबुज्झ--(सं+बुध्) समझना, जान पाना ( ज्ञान मिलवणे, आत्म जागृत होने )

बुज्झ--(बुध्) जानना, जागना (जाणने, जागे होने)

संबोहि--(संबोधि) सत्य धर्म की प्राप्ति, आत्म जागृति, ( सत्य धर्माची प्राप्ति )

पेच्च--(प्रेत्य) परलोक.

मुण--(दे.) जानना (जाणणे)

कंख--(काङ्क्ष) चाहना, वांछना (इच्छा करणे)

सज्ज--(सञ्ज्) आसक्ति करना (आसक्त होने)

गंडूस--(गण्डूष) पानी का कुल्ला (पाण्याची चूळ)

काउरिस--(कापुरुष) डरफोक पुरुष (भ्याड मनुष्य)

कलत्त--(कलत्र) पत्नी.

कसिण--(कृत्स्न) संपूर्ण.

उदधि--(उदधि) सागर.

उप्पह--(उत्पथ) उन्मार्ग, कुमार्ग (आहमार्ग)

आराम--(आराम) उद्यान

इंगाल--(अङ्गार) जलता हुआ कोयला (रखरखीत कोळसा);

(९९)

बलि--(बलीक) झूठा (जोटे)

दह--(द्रह) कुंड.

भड--(भट) योद्धा.

अवड--(दे.) कूप, कुआ (विहीर)

अणय--(अनय) अनीति, अन्याय, चारित्र्यभंग.

वेरुलिय--(वैडुयं). वैडुयंरत्न.

ओमीस--(अवमिश्र) मिश्रीत.

खर--(खर) गधा (गाढव.)

खीर--(क्षीर) दुग्ध दूध.

कल्लं--(कल्यं) कल उखा

अवरण्ह--(अपराहन) दोषहर, (दुपार)

पणिय--(पण्य) विक्रय वस्तु (विक्रीचा माल)

सुत्त--(सूत्र) धागा, धर्मशास्त्र.

अक्खाय--(आख्यात) प्रतिपादित, कथित (हितोपदेशिलेले)



## १ कपिल मुनीचे चरित्र

त्या काळी आणि त्या बेळी कौशांबी नावाची नगरी होती. (तेथे) जितशत्रू राजा होता. काश्यप ब्राह्मण चौदा विद्यास्थाना-मध्ये पारंगत असून राजाकडून बहुमानिला जात होता. त्याच्या उपजीविकेची व्यवस्था केली होती. त्याची यशा नावाची पत्नी होती. त्यांना कपिल नावाचा पुत्र होता. तो कपिल लहान असतानाच काश्यप मरण पावला.

तेव्हा तो मेल्यावर राजाने ते पद दुसऱ्या ब्राह्मणास दिले. तो ( मस्तकावर ) छत्र धरले जात असताना घोड्यावरून (मोठ्या थाटाने) जात असे. त्याला पाहून (पतीचे वैभव आठ-वून) यशा रडू लागली. कपिलाने विचारले. तिने सांगितले ते असे-‘तुझे वडील अशाच थाटाने जात असत, कारण ते विद्या-संपन्न होते.’ तो म्हणाला ‘मी पण अध्ययन करीन.’ ती म्हणाली, ‘येथे तुला मत्सराने कोणी शिकवणार नाही. श्रावस्ती नगरीत जा, तेथे तुझ्या पित्याचा मित्र इंद्रदत्त नावाचा ब्राह्मण आहे. तो तुला शिकवील.’

तो श्रावस्तीस गेला. त्या ( गुरू ) जवळ जाऊन त्यांच्या चरणांवर त्याने लोटांगण घातले. (गुरूंनी) विचारले, ‘तू कोठून

( २ )

आलास ?' त्याने घडले होते तसे सांगितले आणि विगयपूर्वक हात जोडून म्हटले, 'भगवान, मी विद्यार्थी वडिलासमान असलेल्या तुमच्या पायापाशी आलो आहे. तेव्हा विद्या शिकवण्याची माझ्यावर कृपा करावी.' पुत्रप्रेम वाटत असलेल्या उपाध्यायांनीही म्हटले, 'बाळ, विद्याध्ययनाचा तुझा प्रयत्न स्तुत्य आहे. विद्या नसलेला मनुष्य पशू असून त्याला (काहीच) महत्त्व नसते. इह व परलोकी विद्या कल्याणप्रद आहे. तेव्हा विद्या शिक. विद्येची सर्व साधने तुझ्या स्वाधीन आहेत. परंतु अपरिग्रही असल्यामुळे माझ्या घरी भोजन (मिळणार) नाही. त्या शिवाय शिकणे होणार नाही.' तो म्हणाला, 'केवळ भिक्षा मागूनही भोजन मिळवता येईल. उपाध्याय म्हणाले, 'भिक्षावृत्तीने शिकणे होणार नाही. तिच्या चल, तुझ्या भोजनाकरिता कोणातरी श्रीमंताकडे विनवणी करू या.'

ते दोघेही तथे राहत असलेल्या शालिभद्र श्रेष्ठीकडे गेले. श्रेष्ठीने (येण्याचे) कारण विचारले. उपाध्याय म्हणाले, 'हा माझ्या मित्राचा पुत्र विद्यार्थी म्हणून कौशांबीतून आला आहे. आपल्याकडे भोजन करेल व माझ्यापाशी विद्या शिकेल. विद्या शिकण्याला साहाय्य केल्यामुळे तुम्हाला मोठे पुण्य लागेल.' त्याने आनंदाने मान्यता दिली.

तां तेथे जेवण करून अध्ययन करू लागला. दासी त्यास वाढत असे. तां स्वभावतःच थट्टेखोर होता. तारुण्याच्या अत्यंतिक विकारामुळे आणि कामविकाराच्या दुर्जयतेमुळे तो तिच्यावर अनुरक्त झाला आणि तीही त्याच्यावर (प्रेम करू लागली).

( ३ )

एकदा दासींचा उत्सव सुरू झाला. ती खिन्न झाली. त्याने विचारले, 'तुला कसले दुःख झाले आहे ?' ती म्हणाली, 'दासींचा उत्सव चालू आहे. माझ्यापाशी पानांफुलांनाही पैसे नाहीत. मैत्रिणीमध्ये माझे हसे होईल.' तेव्हा तो धैर्यगलित झाला. (ती म्हणाली, ' ( असे ) धैर्यगलित होऊ नका. येथे धन नावाचा श्रेष्ठी आहे. अगदी सकाळीच जो प्रथम त्याच्या भाग्याची इच्छा करेल त्याला तो दोन सुवर्ण मासे देतो. तेथे जाऊन तुम्ही त्याच्या भाग्याची इच्छा व्यक्त करा.' 'ठीक आहे' असे त्याने म्हटल्यावर तिने लांबाने दुसरा ( कोणी ) जाईल म्हणून भल्या पहाटे त्याला पाठविले. जात असताना कोतवालांनी त्याला ( चोर म्हणून ) पकडले व बांधले.

तेव्हा सकाळी त्याला प्रसेनजित ( राजा ) पाशी नेले. राजाने विचारले. त्याने खरी हकिगत सांगितली. राजा म्हणाला, 'जे मागशील ते देतो.' तो म्हणाला, 'विचार करून मागतो.' राजाने 'ठीक आहे' असे म्हटल्यावर अशोकवागेत तो विचार करू लागला, 'दोन माशांनी वस्त्रालंकार होणार होणार नाहीत, तेव्हा शंभर सुवर्ण मोहरा मागेन. त्यानेही घर, गाडीवाहन होणार नाही. तेव्हा हजार मागेन. तेही मुलाबाळांच्या लग्नादींना पुरे पडणार नाही, तेव्हा लाख मागेन. तेही मित्र, स्वजन, बांधव यांचा सन्मान करणे, दीन-अनाथांना दान देणे, विशिष्ट भोगोपभोग भोगणे यांना पुरे होणार नाही, तेव्हा कोटी, शंभर कोटी किंवा हजार कोटी मागेन.' अशा तऱ्हेने विचार करत असता शुभकर्मोदयाने त्याच क्षणी शुभ परिणाम होऊन संवेग निर्माण झाला

( ४ )

आणि तो चिंतन करू लागला, 'काम ही लोभाची लीला ! दोन सुवर्णमाशाकरिता आलो आणि लाभ होतो आहे हे पाहून कोटींनीही मनोरथ पूर्ण होईना. दुसरे म्हणजे विद्या शिकण्याकरिता परदेशी आलो आणि आईची अवज्ञा करून, उपाध्यायांच्या हितकर उपदेशाचा अनादर करून आणि कुलाचा तिरस्कार करून जाणत असूनही सामान्य स्त्रीवर मोहीत झालो. तेव्हा नको ते सुवर्ण, नको तो विषयसंग, पुरे झाले हे संसारातील बंधन.' अशी भावना करीत असताना जातिस्मरण होऊन तो स्वयंसंबुद्ध झाला. स्वतःच केशलोच करून देवतेने दिलेली ( मुनि ) आचाराची उपकरणे घेऊन तो राजा जवळ आला. राजाने विचारले, 'विचार केला का ?' त्याने स्वतःचे मनोगत विस्ताराने सांगितले. तो गाऊ लागला—'जसा लाभ तसा लोभ, लाभाबरोबर लोभ वाढत जातो. दोन माशाकरिता काम होते ( पण ) कोटींनीही सिद्ध होईना.'

राजा आनंदाने म्हणाला, 'आर्य, कोटीही देतो, घ्या.' दुसरा म्हणाला, 'पुरे झाली संपत्ती. मी गृहस्थधर्माचा त्याग केला आहे.' तेव्हा राजाला धर्मलाभ आशीर्वाद देऊन नगरीतून निघाला. सहा महिन्यांनंतर त्याला केवलज्ञान झाले.

० ० ०



## २ कालकाचार्याची कथा

येथे भारतवर्षामध्ये अमरावतीप्रमाणे धारावास नगर होते तथे सिंहाप्रमाणे (पराक्रमी असा) वैरीसिंह राजा होता. त्याची गुणशीलसंपन्न रूपवती अशी सुरसुंदरी नावाची राणी होती. शिष्यातील मोत्याप्रमाणे तिच्या पोटी कालक नावाचा महागुणी पुत्र झाला. नाव व गुणांनी (सार्थ अशी) त्याची सरस्वती नावाची बहिण होती.

आता एकदा राजकुमार क्रीडा करण्याकरिता (नगरा) बाहेरील बगेत गेला. तेथे त्याने आंब्याच्या झाडाखाली गुणधर नावाचे आचर्य पाहिले. विनयाने (त्यांच्या) चरणांना वंदन करून तो आचार्याचा उपदेश ऐकू लागला.

‘शरीर अनित्य आहे, वैभव शाश्वत नाही, आणि मृत्यू नेहमी जवळ आहे, (तेव्हा) धर्मसंग्रह करणे कर्तव्य होय.’ इत्यादि धर्मोपदेश ऐकून कुमार आत्मजागृत झाला आणि त्याने सरस्वतीसमवेत दीक्षा घेतली. लौकरच श्रुतज्ञानाचे अध्ययन करून तो ज्ञानी मुनी झाला. ‘हा योग्य आहे.’ असे जाणून आचार्यवरांनी त्यास आचार्यपदावर स्थापले.

कालकाचार्य अनेक शिष्यासमवेत गावोगाव भव्यजनाना हितोपदेश करीत उज्जैनीत आले. उत्तम चारित्र्याने विभूषित सरस्वती साध्वीही साध्वींच्या बरोबर तेथे गेली.

( ६ )

तेथे अत्यंत बलशाली व स्त्रीलंपट असा गर्दभिल्ल राजा होता. त्याने त्या रूपसुंदरी (साध्वी) ला पाहिले. 'हाय ! जर विषयसुखांचा त्याग करून ही युवतीही व्रत पाळू लागली, तर पुरुषार्थ विफल झालेला कामदेव आजही कसा विजयी आहे ?' असा विचार करून कामपिशाच्चाचे झपाटलेल्या त्या दुष्टाने 'हाय ! प्रबचननाथ सद्गुरू कालक मुनिश्वर भाऊ चारित्र्यधन हिरावून नेले जात असलेल्या माझे अनार्यराजापासून रक्षण कर.' अशारीतीने विलाप करणाऱ्या त्या तरुण साध्वीला तिची इच्छा नसतानाही त्याने बळजबरीने घेऊन अंतःपुरात टाकले.

आता कालकाचार्यही खरोखर ही गोष्ट कळीतरी जाणून राजापाशी जाऊन मृदुशब्दांनी म्हणाले,

'ज्याप्रमाणे तारकांमध्ये चंद्र, देवगणामध्ये इंद्र, त्याच प्रमाणे, हे राजा, लोकांमध्ये तूच मुख्य आहेस. तेव्हा तू असे कसे करतोस ?

राजा अजाणपणही परस्त्रीचा संग दुःखदायक असतो. पुनः जो साध्वीशी संग तो तर अत्यंतिक महापाप आहे.

राजा, अनेक राजकन्यांशी मिलन करूनही तू तृप्त झाला नाहीस. राजे मुनींचा धर्म वाढवितात, लुटत नाहीत. तेव्हा या (गोष्टीं) चा विचार करून स्वतःच माझ्या बहिणीला सोड.' अशारीतीने युक्तिप्रयुक्तीने आचार्यांनी सांगूनही राजाने साध्वीला सोडले नाही. ज्याप्रमाणे आयुष्य क्षीण झालेल्यास महाऔषधी व्यर्थ आहे, त्याप्रमाणे आचार्यांचा, संघाचा आणि मंत्र्यांचा बोध व्यर्थ झाला. तेव्हा क्रोधाविष्ट झालेल्या कालकाचार्यांनी प्रतिज्ञा केली, 'पृथ्वीमध्ये बद्धमूल झालेलेही गर्दभिल्ल राजास्त्री शत्रु

( ७ )

जर बाऱ्याप्रमाणे मी उपटून काढले नाही, तर मी प्रवचन संय-  
माचा घात करणाऱ्या आणि त्यांची उपेक्षा करणाऱ्यांच्या गतीस  
जाईन.' तेव्हा कपटाने उन्मत्त वेष धारण करून कालकाचार्य  
असंबद्ध बडबडत नगरामध्ये फिरू लागले-

‘जर गर्दभिल्ल राजा असेल तर यापेक्षा चांगले काय  
असणार ? जर अंतःपुर रमणीय असेल तर यापेक्षा चांगले काय  
असणार ? जर प्रदेशरम्य असेल तर यापेक्षा चांगले काय  
असणार ? जर राजधानी (श. नगरी) चांगली वसली असेल तर  
यापेक्षा चांगले काय असणार ? जर लोक चांगला वेष धारण  
केले असतील तर यापेक्षा चांगले काय असणार ? जर मी भिक्षे-  
करिता फिरलो तर यापेक्षा चांगले काय असणार ? जर ओसाड  
घरात झोपलो तर यापेक्षा चांगले काय असणार ?’

आता आचार्य पारसकुलात जाऊन मंत्र्यासह राजाच्या  
दरबारात जाऊन सर्वांना सुखकर बोलू लागले. अशारीतीने त्यांनी  
गोड बोलून (श. वचन रसाने) राजा इत्यादि लोकांना रंजविले.  
विद्यादि गुणांमुळे शकराजाने त्यास गुरू मानले. तेव्हा आचार्यांच्या  
सांगण्यावरून सर्व शकसैन्य दुष्ट गर्दभिल्लावरोबर युद्ध करण्याला  
निघाले. आता ते जात असताना पर्वत हलू लागले, पृथ्वी थरथरू  
लागली आणि धूळीने सूर्य झाकला. क्रमाने सिंधुनदी ओलांडून ते  
सौराष्ट्रपरिसरात आले. आता पावसाळा सुरू झाल्यामुळे ते तेथे  
राहिले. शरदऋतू सुरू झाल्यावर गर्दभिल्लाने ज्या लाट राजांचा  
अपमान केला होता ते आणि दुसरे एकत्र येऊन त्यांनी उज्जैनीस  
वेढा घातला.

( ८ )

एकदा रात्री शून्यमनस्क आचार्यांना पाहून शासनदेवता म्हणाली, 'मुनिवर, मनात दुःख धरू नका. सरस्वतीला शीलाने सीतेसमान माना. तिच्या शीलप्रभावाने आपणांस विजय प्राप्त होईल.' असे म्हणून ती अदृश्य झाली.

आता प्राकार शून्य पाहून शकादिराजांनी आचार्यांना विचारले. तेव्हा गर्दभीविद्या साध्य झालेले आचार्य म्हणाले, 'आज अष्टमीचा दिवस. गर्दभिल्ल राजा उपवास करून गर्दभी-विद्या साधेल. नंतर ती गर्दभी मोठ्या आवाजाने आरडेल. शत्रू-सैन्यातील जे तिर्यंच (पशूदि) किंवा मानव आवाज ऐकतील ते सर्व रक्त ओकीत भयाने व्याकुळ व चेतनाविहीन होऊन धरणीवर कोसळतील.' तेव्हा आचार्यांच्या आदेशाने जोवर गर्दभीने तोंड उघडून आवाज केला नाही, तोवर योध्यांनी आपल्या बाणांनी तिचे मुख भरून टाकले. शक्तीहीन झालेली ती गर्दभिल्लावर मलमूत्र विसर्जन करून त्याला लाथांनी मारून गेली.

योध्यांनी (उज्जैनी) नगरी हस्तगत केली, 'अरे दुराचारी, दुसऱ्या जन्मात पापवृक्षाचे फूल आणि नंतर नरक फळ मिळेल.' क्षमा करून गर्दभिल्लाला उज्जैनीतून हाकलून दिले. शकराजाला राज्यावर बसविले आणि म्हटले, 'शकराजा, न्यायी आणि प्रजावत्सल हो. धर्माने राज्याचे पालन कर. धर्माने राज्य अमर होईल आणि अधर्माने नाश पावेल. हे विसरू नकोस.'

आता आचार्य स्वतः संयमात स्थिर झाले. त्या सरस्वती भगिणीलाही प्रायश्चित्ताने संयमात शुद्ध करण्यात आले.

ॐ ० ०

## ४ कमळे चिखलात उगवतात

मथुरानगरीमध्ये कुबेरसेना गणिका होती. पहिल्या गर्भार-पणात डोहाळ्याचा त्रास झाल्यामुळे मातेने तिला वैद्यास दाखवले. त्याने म्हटले, 'गर्भातील जुळ्याच्या दोषाने हिला त्रास होतो आहे. (दुसऱ्या) कोणत्या रोगाचा दोष नाही.'

ही गोष्ट कळताच माता म्हणाली, 'मुली, प्रसूतीचीच्या वेळी तुला शारिरीक त्रास होऊ नये (म्हणून) गर्भपाताचा उपाय शोधते. तेव्हा तू निरांगी होशील आणि मुखोपभोगात अडथळा (ही) होणार नाही. (नाहीतरी) वेश्यांना मुले काय कामाची?'

तिने (तशी) इच्छा केली नाही. ती म्हणाली, 'मुलांना सोडून देईन' तसे कबूल करताच (योग्य) वेळी ती मुलगा व मुलगी प्रसूत झाली. मातेने म्हटले, 'यांचा त्याग केला जाऊ देत.' ती म्हणाली, 'तोवर दहा दिवस (श. रात्री) पुरे होऊ देत.'

तेव्हा तिने कुबेरदत्त व कुबेरत्ता अशी नावे कोरलेल्या दोन आंगठ्या करविल्या. दहादिवस (श. रात्री) संपल्यावर (भरपूर) सोने व रत्ने भरलेल्या छोट्याजा (दोन) होड्यात त्यांना (अलग अलग) ठेवून यमुनानदीत सोडले. वाहत जात असताना दोन श्रीमंतांच्या मुलांनी त्यांना पाहिले. त्यांनी होड्या धरल्या. एकाने मुलास व एकाने मुलीस घेतले. द्रव्ययुक्त असल्यामुळे संतुष्ट होऊन त्यांनी त्यांना आपापल्या घरी नेले.-

(१०)

क्रमाने वाढत ती दोघे) तारुण्यात आली. 'योग्य संबंध' म्हणून कुबेरदत्तेला कुबेरदत्तास दिले. लग्नदिवस संपताच वधूच्या मैत्रिणींनी वराशी द्यूत आरंभिले. (तो हरल्यावर) त्यांनी कुबेरदत्ताच्या हातून (त्याच्या) नावाची आंगठो घेऊन कुबेरदत्तेच्या हाती दिली. ती पाहत असताना सारखी घडण व नाव पाहून (तिच्या मनात) विचार आला, 'मला वाटते, कोणत्या कारणाकरिता बरे या आंगठ्यांची नावे, आकार सारखी आहेत? माझ्या (मनात) कुबेरदत्ताविषयी पतिभाव नाही. आमचा कोणी पूर्वज या नावाचा ऐकवात नाही. तेव्हा या बाबतीत (काहीतरी) रहस्य असावे.' असा विचार करून तिने वराच्या हाती दोन्ही आंगठ्या ठेवल्या.

(त्या) पाहत असताना त्याच्याही (मनात) तसाच विचार आला. वधूला आंगठी देऊन तो आईपाशी गेला. त्याने तिला शपथ घालून विचारले. तिने जसे ऐकले होते तसे सांगितले. तो म्हणाला, 'आई तुम्ही अयोग्य केले.' ती म्हणाली, 'आम्ही मोहवश झालो होतो (जे झाले) ते झाले. केवळ पाणिग्रहण करण्यापुरतीच वधू दूषित झाली आहे. याबाबतीत पाप नाही, मी मुलीला तिच्या घरी पाठवीन, तू प्रवासाहून परत आल्यावर तुझा योग्य संबंध घडवून आणिन.' असे म्हणून तिने कुबेरदत्तेला तिच्या घरी पाठविले.

तिनेही (आपल्या) आईला तसेच विचारले. तिने जसे घडले तसे सांगितले. त्यामुळे संसाराविषयी विरक्ती वाढून तिने दीक्षा घेतली. प्रवर्तिनी बरोबर ती विहार करू लागली. प्रवर्तिनीच्या सांगण्यावरून तिने आंगठ्या जपून ठेवल्या.

चारित्र्य शुद्ध होत असल्यामुळे तिला (अवधिज्ञान) प्राप्त झाले (अवधिज्ञानाने) कुबेरसेनेच्या घरी राहत असलेल्या कुबेरदत्तास

(११)

महिले. (हाय! (काय हा) अज्ञानाचा दोष! 'विचार करून त्यांना बोध करण्याच्या हेतूने साध्वींच्या वरोवर विहार करीत ती मश्वरेस गेली. ती कुबेरसेनेच्या घरी वस्ती मागून (म्ह. राहण्याची परवानगी घेऊन) राहिली ती (कुबेरसेना) वंदन करून म्हणाली, 'भगवतींनो! मी केवळ जन्माने गणिका आहे, पण आचरणाने नव्हे. कारण आता चांगल्या कुळातील बधूप्रमाणे मी एका पुरुषाची सेवा करते. माझे निवामन्यात शंकाविरहित आहे. तेव्हा माझ्यावर अनुग्रह करून आपण ( येथे ) राहावे.' त्या तेथे राहिल्या. तिचा ( कुबेरदत्ता पासून झालेला ) मुलगा लहान होता. ती त्याला पुनः पुन्हा साध्वी जवळ ठेवू लागली. तेव्हा त्यांची (योग्य) वेळ (म्ह. कालळघ्नी) जाणून साध्वी त्यांना बोध करण्याकरिता खालील गाथा गाऊन मुलाला जोडवू लागली (श. मुलाची स्तुती करू लागली.)

'बाळ, तू (एकाच आईच्या पोटी जन्मलेला म्हणून) माझा भाऊ आहेस' एकाच आईच्या पोटी जन्मलेला असा माझ्या पतीचा भाऊ म्हणून) माझा दीर आहेस, ( माझ्या पतीपासून झालेला म्हणून) माझा पुत्र आहेस, ( माझ्या पतीच्या दुसऱ्या स्त्रीचा पुत्र म्हणून ) सवतीपुत्र आहेस, (माझ्या कुबेरदत्त भावाचा पुत्र म्हणून) माझा आहेस, आणि ( एकाच मातेच्या पोटी जन्मल्यामुळे माझा भाऊ झालेल्या तुझा पिता पर्यायाने माझाही पिता झाला. एकाच मातेच्या कुबेरसेनेच्या पोटी जन्मल्यामुळे तू त्याचाही भाऊ झालास. म्हणजे पर्यायाने पित्याचा भाऊ म्हणून) काका आहेस.

तू ज्याचा पुत्र आहेस तोही (कुबेरसेनेच्या पोटी जुळा जन्मलेला म्हणून माझा भाऊ, (त्याशी लग्न झाले म्हणून) पती, (बालक



(१२)

काकाचा पिता म्हणून) आजोबा, (दिराचा पिता म्हणून ) सासरा आणि (आई सवत आल्याने तिचा) पुत्रही आहे.

तू जिच्या गर्भात जन्मलास तीही (तिच्याच पोटी जन्मले म्हणून) आई. (पतीची आई म्हणून) सासू. (पतीची दुसरी स्त्री म्हणून) सवत, (भावाची पत्नी म्हणून) भावजय, (बालक भाऊ पुत्राच्या पित्याची आई म्हणून) आजी आणि सवताच्या पुत्राची पत्नी म्हणून) सूनही आहे.'

ते तशात-हेचे जोवणे (श. स्तुती) ऐकून कुबेरदत्ताने वंदन करून विचारले, 'साध्वी' (माते), हे (परस्पर) विरुद्ध व असंबद्ध वर्णन कसले व कोणाच्या बाबतीत आहे? अथवा मुलाला खेळ-विण्याकरिता अयोग्य असे बोललात ?' असे विचारल्यावर साध्वी म्हणाली, 'श्रावक हे, खरे आहे.' तेव्हा तिने अवधिज्ञानाने पाहिलेले त्या दोघाही जणांना प्रमाणपूर्वक सांगितले आणि आंगठ्याही दाखविल्या.

ते ऐकून तीव्र वैराग्य निर्माण होऊन कुबेरदत्ता 'हाय! (कसले हे) अज्ञानाने दुराचरण करविले !' असा (विचार करून) द्रव्य मुलास देऊन साध्वीला वंदन करून 'तुम्ही मला बोध केला, मी स्वतःचे हित करीन,' असे (म्हणून) लगेच निघाली. मुनिवेष व आचार (धर्म) गृहण करून वैराग्य विचलित होणार नाही अशा उत्कृष्ट तपाचरणांनी देहाचा क्षय करून तो देवलोकात गेला. कुबेरसेनाही गृहिणीस योग्य असे नियम घेऊन दयाळू वृत्तीने राहू लागली. साध्वीही प्रवर्तिनीपाशी गेली.

० ० ०



## ५ कुलदधू

पुडवधननगरात एक श्रीमान तरुण ऐन तारुण्यात आलेल्या आपल्या पत्नीस सोडून (व्यापाराकरिता) देशांतरास गेला. आकरा वर्ष उलटली.

एकदा जवळ लोकात उन्माद निर्माण करणारा, रजरेणूनी भरलेली फुले असलेला, दक्षिणे कडील (मुखकर असा मलय) वायू पसरविणारा, कालकलाट माजविणारा आणि मेळयातील गायकांच्या आकर्षक गीतांनी तरुणजनांना आनंदित करणारा वसंतऋतू मुरु झाला असताना वधू मैत्रिणीसमवेत (नगरा) बाहेररील बागेत गेली. (तेथील) वापिकेत प्रेमाचा आदर्श अशी चक्रवाकांची जोडपी क्रीडा करत असलेली आणि दुसरीकडे सारसांची जोडपी (रमत असलेली) पाहिली. हंसीचा अनुनय करणारा हंस (पण) पाहिला. तेव्हा वसंताच्या कमावासना उद्दीपित करण्यामुळे, उपवनाच्या रमणीयतेमुळे, परिवाराच्या उत्कट प्रेमांमुळे, विषयाभिलेषाच्या अनेकजन्मातील सवयींमुळे, तारुण्याच्या विकारबाहुल्यामुळे आणि इंद्रियाच्या चंचलतेमुळे अत्यंत दुःख देणाऱ्या महाव्याधीप्रमाणे तिच्या सर्व शरीरात मदनाचा संचार झाला. तिने (परतण्याचा) विचार केला '(प्रवासास गेलेल्या) त्या निर्दयाने दिलेला अवघी संपला, तो आला माही, तेव्हा कोणातरी तरुणाला आणबिते.' तिने हे काम

(१४)

‘रहस्यमंजुषिका नावाच्या दासीला सांगितले. ती म्हणाली, ‘एवढा काळ (शीलाचे) रक्षण करून शीलभंग करू नका. कोणी मूर्ख तरी सागर तरून जाऊन गोपदामध्ये बुडेल का?’

वधू म्हणाली, ‘सरवी. आता मदनबाणांचा आघात मी (सहन करू) शकत नाही, तेव्हा याबाबतीत आश्रिक (सांगून) काय उपयोग? कोणाला तरी पाठव.’

ती म्हणाली, ‘जर असे असेल तर काळजी करू (च. झुलू) नका. आपली अभिलाषा मी (पुरी) करते.’

तेव्हा तिने ही गोष्ट सामूला सांगितली. तिनेही पतीला (सांगितली). त्यानेही तिच्या बरोबर खोटे भांडण करून मुनेला म्हटले, ‘मुली, ही तुझी सामू घर सांभाळण्यास पात्र नाही, तेव्हा तू सर्व (जबाबदारी) स्वीकार.’

‘ठीक’ म्हणून कबूल केल्यावर घरातील करावयाची सर्व कामे तिला समजाऊन दिली, तेव्हा रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरी (म्ह. पहाटे) उठून तांदूळ वगैरे कांडणे, दळणे, पाखडणे, स्वयंपाक करणे, वाढणे, इत्यादि (कामे) आणि दुसरी अनेक लहान, मध्यम, मोठी कामे करीत असताना, फुले, दागिने कपडे, पानाचा विडा, उटी, विशिष्ट प्रकारचा आहार न मिळता क्रमाने रात्रीचा पहिला प्रहर होत असे. ती थंड, रूक्ष व अनुचित अन्न खात असे आणि अत्यंत दमून झोपत असे. अशारीतीने दररोज (कामे) करीत असताना तिचे रूप-तारूप्य नष्ट झाले. पानाचे विडे, (सुगंधित) द्रव्यांची उटी व शृंगार मिळोनासे झाले. काही काळ निघून गेला.

(१५)

‘(हीच) संधी’ असा ‘विचार) करून दासी तिला म्हणाली,  
‘पुरुषाला आणू का ?’

ती म्हणाली, ‘सखी, मूर्ख आहेस तू. तुला पुरुष सुचतो. पण  
जवणाविषयीही मला शंका वाटते.’

कालांतराने ( तिचा ) पती ( परत ) आला. आनंदोत्सव  
झाला. वडिलधाऱ्यासह वधू आनंदली.

( या दृष्टांताचे ) हे स्पष्टीकरण—ज्याप्रमाणे तिने कामास  
भग्न होऊन स्वतःस सावरले, त्याप्रमाणे मुनीनेही क्रिया व ज्ञानाच्या  
अनुष्ठानाने ( आत्म्याचे रक्षण करावे ).

श्रुतदेवीच्या कृपेने धर्मशास्त्रानुसार सांगितलेले ( कुल )  
वधूचे चरित्र ऐकणाऱ्या माणसाने स्वतःचे रक्षण करावे.

० ० ०

## ६ स्थापत्यापुत्राची दीक्षा

त्यावेळी कृष्णवामुदेव चतुरंगिणी सेनेसमवेत उत्कृष्ट अशा विजय (नावाच्या) हत्तीवर आरूढ झाल्यावर स्थापत्यागृहणीचा जेथे वाडा होता तेथे गेले. जाऊन स्थापत्यापुत्रास असे म्हणाले, 'हे देवप्रिय, केश लोच (श. मुंडन) करून दीक्षा घेऊ नको. हे देवप्रिय, माझ्या बाहूंच्या संरक्षणाखाली विपुल मानवी वैषयिक सुखोपभोगांचा (मनसोक्त) उपभोग घे. देवप्रियास जो त्रास किंवा दुखापत होईल त्या सर्वांचे मी निवारण करीन.'

तेव्हा कृष्णवामुदेवांनी असे म्हटल्यावेळी स्थापत्यापुत्र कृष्णवामुदेवांना असे म्हणाला, 'हे देवप्रिय, जर जीवीताचा अंत करणाऱ्या मृत्यूस थोपवाल आणि (श. किंवा) शरीर सौंदर्य नष्ट करणाऱ्या म्हातारपणास रोखाल; तर आपल्या बाहूंच्या संरक्षणाखाली विपुल मानवी वैषयिक सुखोपभोगांचा उपभोग घेत राहीन.'

तेव्हा स्थापत्यापुत्राने असे म्हटल्यावेळी कृष्णवामुदेव स्थापत्यापुत्रास असे म्हणाले, 'हे देवप्रिय, यांचे निवारण करणे अत्यंत कठिण आहे. खरे म्हणजे आपल्या कर्मांचा क्षय झाल्यासिवाय महासार्थशाली देव किंवा दानवांनाही यांचे निवारण करणे (शक्य) नाही.'

तेव्हा तो स्थापत्यापुत्र कृष्णवामुदेवांना असे म्हणाला, 'जर यांचे निवारण करणे अत्यंत कठिण असेल आणि खरोखर आपल्या

(१७)

कर्माचा क्षय झाल्याशिवाय महासामर्थ्यशाली देव किंवा दानवांना (ही) यांचे निवारण करणे शक्य नसेल; तर, हे देवप्रिय, अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरती, कषायाद्वारे संचित केलेल्या स्वतःच्या कर्माचा क्षय करण्याची मी इच्छा करतो.'

तेव्हा त्या कृष्णवासुदेवांनी घरच्या नोकरांना बोलावले, बोलावून स्थापत्यापुत्राचा दीक्षाविधी करण्याची आज्ञा दिली. नंतर त्या स्थापत्यापुत्रास पुढे घालून ते कृष्णवासुदेव जेथे अरिहंत भगवान अरिष्टनेमी होते तेथे गेले. स्थापत्यापुत्राने भगवान अरिष्टनेमींच्या (चरणा) पाशी अलंकार काढले.

तेव्हा त्या स्थापत्यागृहिणीने हंसालंकृत वस्त्रामध्ये (वस्त्रा) भरण, पुष्पमाला व अलंकार घेतले व आसवे गाळीत असे म्हटले, 'बाळ, यत्न कर; बाळ, परिश्रम कर; बाळ पराक्रम कर आणि या (मुनिधर्मचे आचरण करण्याच्या) गोष्टीत निष्काळजी राहू नकोस.'

तेव्हा त्या स्थापत्यापुत्राने हजार पुरुषासमवेत स्वतःच पंचमुष्टिकेशलोच केला आणि दीक्षा घेतली.

०००

## ७ दमयंती स्वयंवर

येथे मारतक्षेत्रात कोशलदेशामध्ये कोशलानगरी होती. तेथे इक्ष्वाकुकुलात जन्मलेला, असामान्य न्याय, त्याग व पराक्रमाने युक्त असा निषध नावाचा राजा होता. त्यास सुंदरीराणीच्या पोटी जन्मलेले, लोकांच्या मनाला आनंद देणारे नल व कूबर (नावाचे) दोन पुत्र होते.

इकडे विदर्भदेशाला भूषणभूत असे कुंडिननगर होते. तेथे शत्रूरूपी हत्तींच्या कळपांना ( जेरीस आणणारा ) शरभ असा भीमरथ राजा होता. त्याची सर्व अंतःपुररूपी झाडाचे ( मोहक ) फूलच अशी पुष्पदंती राणी होती. वैषयिक सूखांचा उपभोग घेत असताना त्यांना अखिल त्रिभुवनाला भूषणभूत अशी कन्या झाली.

सत्पुरुषाच्या छातीवर उत्कृष्ट श्रीवत्सचिन्ह ( श. रत्न ) असावे, त्याप्रमाणे तिच्या कपाळावर सूर्यबिंबासारखा स्वाभाविक तिलक होता.

‘ही मातेच्या गर्भात असताना मी सर्व शत्रूंचे दमन केले,’ असा (विचार करून) पित्याने तिचे दमयंती असे नाव ठेवले. शुक्लपक्षातील चंद्रकोरीप्रमाणे सर्व जनतेच्या डोळ्यांना आनंद देणारी ती मोठी होऊ लागली. आणि (योग्य) वेळी (विद्या ग्रहण करण्याकरिता ) तिला कलाध्यापकाच्या स्वाधीन केले.

(१९)

आरशातील प्रतिबिंबाप्रमाणे वृद्धिमान असलेल्या तिच्या-  
मध्ये सर्व कला संक्रांत झाल्या आणि अध्यापक केवळ साक्षी  
होता.

ती तारुण्यात आली. तिला पाहून आईवडिल विचार करू  
लागले, 'ही असामान्य सौंदर्यशालीनी असून विधीच्या विज्ञानाचा  
प्रकर्ष आहे. तेव्हा हिला अनुष्ठा वर (दिसत) नाही. जरी असला  
तरीही तो आम्हाला माहित नाही. म्हणून स्वयंवर करणे योग्य  
आहे.'

तेव्हा दूत पाठवून राजे आणि राजपुत्रांना बोलावले. ते  
हत्ती, घोडे, रथ व पायदळाममवेत आले. अनुपमेय सत्वशील असा  
नळही तेथे आला. भीमराजाने सन्मान केल्यावर ते उत्कृष्ट  
निवसस्थानी राहिले. सुवर्णमय खांद्याने सुशोभित असा स्वयंवर  
मंडप करविला. तेथे उत्तम आकाराची सिंहासने ठेवली. त्यावर  
राजे बसले.

इतक्या अवधीत पित्याच्या आदेशानुसार मोहक रविबिंब  
असलेल्या पूर्वदिशेप्रमाणे पसरलेल्या प्रभाकिरणसमूहांनी युक्त अशा  
भालावरील (स्वाभाविक) तिलकाने अलंकृत झालेली संपूर्ण  
चंद्रम्याने सुंदर दिमणाच्या पौर्णिमेच्या रात्रीप्रमाणे प्रसन्न चेहरा  
असलेली आणि शुभ्र रेशमी वस्त्र परिधान केलेली दमयंती स्वयंवर  
मंडप भूषवित आली. तिला पाहून आश्चर्ययुक्त चेहऱ्यांनी राजांनी  
तिलाच आपल्या नेत्रकटाक्षाचा लक्ष्य केले.

तेव्हा राजाच्या आदेशाने अंतःपुरातील द्वारपालिका भद्रा राज-  
कुमारीच्या पुढे होऊन राजांचे व राजकुमारांचे बिक्रम सांगू लागली.

(३६)

‘दड बाहुबल असलेले बल नावाचे हे काशीनगरीचे महाराज आहेत. (उंचच) उंच (उफाळणाऱ्या) लाटा असलेली गंगा (नदी) पाहण्याची इच्छा असेल तर यांना वर.’

दमयंती म्हणाली, ‘भद्रे, काशीतील निवासी दुसऱ्याची फसवणूक करण्याची सवय असलेले आहेत असे ऐकायला येते, तेव्हा माझे मन यांच्यात रमत नाही म्हणून पुढे हो.’ तसेच करून ती म्हणाली,

‘यांच्या हत्तींना सिंहच असे हे सिंह नावाचे कुंकणाग्रिप महाराज आहेत. यांना वरून ग्रीष्मऋतूमध्ये केळीच्या बनावट (यांच्याशी) सुखाने क्रीडा कर.’

दमयंती म्हणाली, ‘भद्रे, कुंकणवासी विनाकारण रागावतात, तेव्हा पावला-पावलागणिक यांची मनघरणी करणे मला शक्य होणार नाही. तेव्हा दुसऱ्याविषयी सांग.’ पुढे होऊन ती म्हणाली,

‘महेंद्राप्रमाणे सौंदर्य असलेले हे महेंद्र काश्मीर देशचे महाराज आहेत. केशराच्या वाटिकेमध्ये क्रीडा करण्याची मनीषा असेल तर यांना वर.’

राजकुमारी म्हणाली, ‘भद्रे, माझे शरीर (गार) तुषार-संचयाला घाबरते हे तुला माहित नाही का ? तेव्हा येथून जाऊन,’ असे म्हणत असताना द्वारपालिका पुढे जाऊन म्हणू लागली,

“विपुल द्रव्यभांडार असलेले हे जयकोश महाराज कौशांबीचे स्वामी आहेत. मृगनयने, कामदेवाप्रमाणे रूप असलेले हे



(३१)

तुझे मन मोहून टाकतात का ?'

राजकुमारी म्हणाली, 'कपिजले, गुंफलेली ही वरमाला अत्यंत रमणीय आहे.' भद्रेने विचार केला, 'उत्तर न देणे हाच यांना नकार आहे.' तेव्हा पुढे जाऊन भद्रा म्हणाली,

'कोकीळकंठी, ज्यांच्या तलवाररूपी राहू (दैत्या) ने शत्रूंच्या कीर्तीचंद्रांना ग्रासिले आहे त्या कलिंगाधिपती जय (महाराजां) च्या गळ्यात माळ घाल.''

राजकुमारी म्हणाली, 'तातासमान वृद्ध वय ( श. परिपक्व वय) झालेल्या यांना प्रणाम असो.' तेव्हा भद्रेने पुढे जाऊन म्हटले,

'गजगामिनी, ज्यांच्या हत्तींच्या कळपांच्या (गळ्यातील) घंटांच्या निनादाने जणू ब्रह्मांड फुटते ते हे गौडपती बीरमुकुट (महाराज) तुला आवडतात का ?'

राजकुमारी म्हणाली, 'बाई ग ! असेही माणसांचे काळे-कुट्ट भयानक रूप असते ? त्वरित पुढे चल, माझे हृदय थरथरू लागले.' तेव्हा किंचित हसत भद्रा पुढे गेली आणि बोलू लागली,

'हे पद्माक्षी, सिप्रा नदीच्या किनाऱ्यावरील वृक्षवाटिकेत क्रीडा करण्याची इच्छा असेल तर या अवंतिपती वचनभांना नाथ कर.'

राजकुमारी म्हणाली, 'हुशः ! या स्वयंवरमंडपात फिरून मी दमून गेले. तेव्हा अजून किती वेळ सांगणार आहे ?' भद्रेने विचार केला, " हे पण माझ्या मनाला आनंद देत नाहीत," असे

(११)

राजकुमारीने सुचविले ( श. सांगितले ). तेव्हा पुढे जाते.' असा ( विचार करून ) तसेच करून भद्रा बोलू लागली,

‘ ज्यांचे सौंदर्य पाहून सहस्राक्ष ( इद्रा ) ला ( आपले ) हजार डोळे निश्चितपणे सफळ झाले असे वाटते ते हे निषधपुत्र युवराज नळ आहेत.’

आश्चर्यचकित मनाने दमयंतीने विचार केला, ‘ओहो ! सर्व रूपवंतांना मागे सारणारी ( काय ही ) शरीराची ठेवण ( म्ह. मोहक अंगलट ) ! ओहो ! ( काय हे ) असामान्य लावण्य ! ओहो ! ( काय हे ) विपुल सौंदर्य ! ओहो ! माधुर्याचा निवास असलेला ( काय हा ) विलास ! तेव्हा, हृदया, यांना पती मानून परम प्रसन्नता मिळव.’ तेव्हा तिने नळाच्या नाजूक गळघात वरमाला घातली. ‘ओहो ! हिने उत्तम वर निवडला, चांगल्या ( अनरूप वरा ) स. वरले’ असा लोकात कलकलाट माजला.’

० ० ०

## ८ पद्मावती उदयनास दिली

( नंतर दाखी येते. )

दासी—(अंतराळात) कुंजरिके, (अग) कुंजरिके, कोठे कोठे आहेत राजकन्या पद्मावती ? ( ऐकल्याचा अभिनय करून ) काय म्हणालीस ? ‘या राजकन्या माधवीलताकुंजापाशी चेंडूने खेळताहेत’ म्हणून ? तोवर राजकुमारीपाशी जाते. ( फिरून पाहून ) अय्या ! कर्णफुले उंचावलेल्या, व्यायामाने निर्माण झालेल्या घर्माबिंदूंनी आकर्षक ( श. चित्रविचित्र ) झालेल्या आणि श्रमामुळे चेहरा मोहक दिसत असलेल्या या राजकन्या इकडेच येत आहेत. तोवर मी जवळ जाते. ( जाते )

( असा प्रवेशक ( संपतो ) )

( तेव्हा चेंडूने खेळत असलेली पद्मावती परिचारासमवेत वासवदत्तेसह प्रवेश करते )

वासवदत्ता—सखी, हा ( घे ) तुझा चेंडू.

पद्मावती—आर्ये, आता एवढे ( खेळणे पुरे ) होऊ दे.

वासवदत्ता—सखी, खूप वेळ चेंडूने खेळून अधिक आरक्त झालेले तुझे हात जणू ‘दुसऱ्यांचे’ झाले आहेत. ( अतिशय लालसर झाल्यामुळे जणू ते तिचे नव्हेत कारण

(२४)

श्रमलेल्या हातावर तिचा ताबा न राहून ते जणू  
परक्याचे झाले. तसेच यावेळी तिच्या लग्नाच्या  
वाटाघाटी सुरू असल्यामुळे अत्यंत प्रेमांमुळे ते हात  
आता दुसऱ्याचे झाले असा श्लेष)

दासी—खेळावे, तोवर राजकुमारींनी खेळावे, तोवर कौमार्यपणाचा  
हा रमणीय काळ उपभोगावा.

पद्मावती—आर्ये, चेष्टा करण्याकरिताच जणू आता माझ्याकडे  
रोखून का पाहता ?

वासवदत्ता—नाही, नाही. हले आज तू भारीच सुंदर दिसतेस. जणू  
सर्वबाजूंनी आज तुझे बरमुख पाहते आहे. ( श्लेषाने

श्रमाने अधिक लाल झालेला तुझा सुंदर चेहरा सर्व बाजूंनी पाहा-  
वासा वाटतो. तुझ्या वराचे वदन जणू तुझ्या सन्निध फिरते—  
म्हणजे विवाह जवळ आलेल्या कन्येसारखी आज तू मला अतिशय  
सुंदर दिसतेस )

पद्मावती—जा. आता माझी चेष्टा करू नका.

वासवदत्ता—महासेनाच्या भावी सूनवाई, ही मी गप्प बसले.

पद्मावती—हा महासेन नावाचा कोण ?

वासवदत्ता—उज्जैनीचा प्रद्योत नावाचा राजा आहे. सैन्याच्या  
( मोठ्या ) प्रमाणावरून त्याचे महासेन असे नाव  
पडले आहे.

दासी— त्या राजाशी संबंध (जडावा अशी) राजकुमारीची इच्छा  
नाही.

(२५)

वासवदत्ता-तर मग खरोखर आता ती कोणाची अभिलाषा करते ?

दासी- उदयन नावाचे वत्स (देशाचे) महाराज आहेत. त्यांच्या गुणावर राजकुमारी लुब्ध आहेत.

वासवदत्ता-(स्वगत) आर्यपुत्र पती (व्हावा अशी) अभिलाषा करते ? (उघड) कोणत्या कारणाने ?

दासी- ते दयाळू आहेत म्हणून.

वासवदत्ता- (स्वगत) माहित आहे, मला माहित आहे. याच (गुणा)मुळे मी त्यांच्यावर मोहित झाले होते.

दासी- राजकुमारी, जर ते महाराज विद्रूप असतील -

वासवदत्ता- नाही, नाही. (ते) सुंदरच आहेत.

पद्मावती-आर्ये, आपण कसे जाणले ?

वासवदत्ता-(स्वगत) आर्यपुत्राविषयीच्या पक्षपातामुळे मी मर्यादेचे ( श. चालरीतीचे ) उल्लंघन केले. आता काय करावे ? असू देत. समजले (उघड) असे उजैनीतील लोक बोलतात.

पद्मावती-(हे) जुळते. खरोखर हे उजैनीला अपरिचित नाहीत. सर्व लोकांच्या मनाला आनंददायक तेच खरे सौंदर्य.

( तेव्हा दाई प्रवेश करते )

दाई-राजकुमारींचा विजय असो. राजकुमारी (आपणाला) दिले. (म्ह. आपला विवाह ठरला).

वासवदत्ता-आर्ये, कोणाला ?

दाई-वत्स ( देश ) च्या उदयनमहाराजांना.

वासवदत्ता-आता त्या महाराजांचे कुशल आहे ना ?

(२९)

दाई-कुशल आहे. ते येथे आले आहेत आणि त्यांची राजकुमारींना मान्यता आहे.

बासवदत्ता-महा संकट (कोमळले).

दाई-याबाबतीत महा संकट कोणते ?

बासवदत्ता-खरोखर काही नाही. (प्रथमपत्नीच्या मृत्यूने) तशा प्रकारे दुःख करून (आता) उदासीन व्हावे (हे योग्य नव्हे).

दाई-आर्ये, शास्त्रानुसार थोर पुरुषांची हृदये सहज (म्हणजे चटकन) मुळपदावर येतात (शांत होतात)

बासवदत्ता-आर्ये, स्वतःच त्यांनी मागणी घातली ?

दाई-छे, छे ! दुसऱ्या कामासाठी येथे आले असता त्यांचे उत्तम कुळ, (विशेष) ज्ञान, (तरुण) वय व (सुंदर) रूप पाहून स्वतःच महाराजांनी देऊ केले.

बासवदत्ता- (स्वगत) अस्से ! आता याबाबतीत आयंपुत्र दोघी नाहीत.

दुसरी दासी- (प्रवेश करून) त्वरा करावी, तोवर आर्येने त्वरा करावी. आजच खरोखर चांगला मुहूर्त आहे. आजच मंगल विवाह करावा असे आमच्या महाराणें म्हणतात.

बासवदत्ता- (स्वगत) जसजशी घाई होते आहे. तसतशी माझे हृदय अंधःकाराने भरून जाते आहे.

दाई- चलावे, राजकुमारींनी चलावे. (सर्व जातात)



## ९ मूर्खपणाचे बक्षीस

राजा- पण हे दोघे कोण ?

विदूषक-हा कंचुकी आणि (श. पण) ही दाई.

राजा- (जवळ जाऊन) दाई आणि कंचुकीचे कुशल आहे ना ?

दोघे- (स्वगत) कसे महाराजच आले ? (उघड) महाराजांच्या पदकमलांच्या दर्शनाने.

विदूषक-माझ्याही असे म्हणा.

प्रतिहारी-आर्य, चोहोकडूनही कशा माकडचेष्टा प्रकट करतोस ?

विदूषक- हं ! आता काही सुद्धा म्हणू नको. भूकेने व तहाने व्याप्त झालो आहे.

प्रतिहारी-माझ्या हाती वेत आहे.

मंदारक-खरोखर पिशाच्च पिशाच्चाला पीडा देत नाही.

राजा-तसे म्हणू नको. खरोखर- (हा) ब्राह्मण आहे.

विदूषक- (क्रोधाविष्ट होऊन) थोरड्या, पुनः एक वेळ बोल.

मंदारक-तुझा बाप म्हातारा झाला नव्हता का ?

विदूषक-महाराज जवळ असताना त्यांच्या मित्राच्या बडिलाना कसे दूषण देतोस ?

पिगलक-तू कशी महाराजांच्या कंचुकीची चेष्टा केलीस ?

विदूषक-पिगलक, राजाचा प्रिय मित्र असलेल्या माझा अपमान करू नको. (पिगलक लाजतो.)

(२८)

प्रतिहारी-आर्य, श्रीमंताघरच्या जावायाप्रमाणे, ब्राह्मणाच्या बटकीप्रमाणे, तुरुष्काने पोसलेल्या शिकारी कुठ्याप्रमाणे आणि रोगी कोल्ह्याप्रमाणे तू सर्व लोकांना का दश करतोस ?

विदूषक-कुत्रा भुंकतो, राजा आज्ञा करतो.

दाई व कंचुकी-जशी ब्राह्मणशिरोमणीची आज्ञा.

आनंदसुंदरी- (स्वगत) काय हा ब्राह्मणाचा अपमान !

राजा- (बाजूला) मित्रा, अंतःपुरात जाऊन एकांतात मंदारक कंचुकीस बोलाव.

विदूषक-ठीक. (जाऊन त्याच्या सह येतो.)

मंदारक- (श्रम झाल्याचा अभिनय करून दमल्याचा आव आणून मी कोठे प्रतिष्ठान ठेवू (म्ह. बसू) ? (निश्वास टाकून जवळ जाऊन) महाराजांचा विजय असो.

विदूषक- (चोहोकडे पाहून मोठ्याने) अरे, वाघ ! वाघ ! !  
(आनंदसुंदरी. घाबरून ओरडून राजाला आलिंगन देते.  
दाई व कुरंगक आणि मंदारक (ही) घाबरल्याचा अभिनय करतात. )

प्रतिहारी-हे काय उड्डवळं ? ( मंदारक दिशा न्याहाळून काठी खाली पाडतो. )

विदूषक- गळ्यातील जानवे बांधत म्ह. जानव्याची गाठ धरत)  
खरेच मी कोठे धावू ?

राजा-हं ! मूर्ख ! प्रत्येक घटकेला कसा भ्रम होतो ?

विदूषक-सरोखर पाहण्यासारखे आहे.

मंदारक-मला भ्रम झाला.



(२९)

राजा- (स्पर्शसुख अनुभवीत) चंद्राच्या किरणांनी पाझरणारी  
चंद्रकांतमणी की मसुराच्या थंडगार पाण्यात घासलेले,  
चंदन की स्वर्गातून पडलेला अमृतरस ? (आपल्या)  
आवडत्या माणसाच्या स्पर्शाचीन झाल्यानेच असे होते.  
तसेच खरोखर

अवयवांवर माल्लिका फुलांची मोठी मुद्रा, डोळ्यात  
रसरशीत कमळक्रोशाचे सौंदर्य, शरीरावर नव-स्वेदसमृद्धी,  
पुनः मनात परब्रह्मच्या आनंदाचा (अखंड) साक्षात्कार !

मंदारक-तो वाघ कोणत्या ठिकाणी आहे ?

विदूषक-संगीतगाळेच्या दाराच्या तळाशी वरच्या भागामध्ये.  
राजा-अरे ! मूर्खाने चितारलेला वाघ (म्ह. वाघाचे चित्र) पाहून  
उगीचच ओरडा केला.

विदूषक- (स्वगत) खरेच याला कसला कमीपणा आला ? पण  
वाघाची डरकाळी नव्हती. (उघड क्रोधाने) अरे, कृतघ्न  
आहेस. कारण माझ्या प्रभावाने आर्लिगन (सुख)  
मिळूनही असा विचार करतोस ?

राजा- 'हर्षाने' तुझा प्रभाव. (विदूषकाला रत्नजडीत कडे देतो)

विदूषक- (हातात ब्रह्म) अरे, मीही अर्ध्या पृथ्वीचा सार्वभौम  
आहे.

राजा-ते कसे ?

विदूषक-कारण तुझ्या बरोबर माझ्याही हातात एक कडे आहे.

## १० नवकारमंत्राचा प्रभाव

१. अत्युत्तम पूजेस पात्र असणाऱ्या अरिहंतांना वंदन असो.  
(अनंत) सुखाने संपन्न असणाऱ्या सिद्धांना वंदन असो. पाच प्रकारचे आचार पाळत असलेल्या आचार्यांना वंदन असो. स्वाध्याय आणि ध्यानामध्ये रममाण असणाऱ्या उपाध्यायांना वंदन असो. निर्वाणा ( करिता साधना करणारे ) साधक असलेल्या मुनींना वंदन असो.
२. हा पंचनमस्कार ( मंत्र ) सर्व पापांचा नाश करणारा असून सर्व मंगलामध्ये प्रमुख मंगल आहे.
३. दीर्घकाळही तप आचरिले, सदासर्वकाळ (व्रतांचे) आचरण (केले) आणि सिद्धांत शास्त्राचे (श्रुताचे) पुष्कळ पठण केले आणि जर नमस्कारात मन नसेल तर ते (सर्व) निष्फळ झाले.
४. मनाने चिंतिलेले, वाचने प्रार्थिलेले आणि कायेने आरंभलेले (कार्य) जोवर नमस्कार (मंत्रा) चे स्मरण केले जात नाही तोवर (पुरे) होत नाही.
५. हा नमस्कर (मंत्र) संसाररूपी समरांगणात पडलेल्यांना आश्रयाचे ठिकाण आहे. असंख्य दुःखांच्या नांशाचे कारण आहे आणि मोक्षमार्गाचा हेतू आहे.

( ३१ )

६. ( हा पंच नमस्कारमंत्र ) ( शाश्वत ) कल्याणरूपी, कल्पवृक्षाचे अवध्य ( म्ह. न मरणारे ) बीज आहे, संसाररूपी हिमपर्वताच्या शिखरांना ( वितळवून टाकणारा ) प्रखर सूर्य आहे आणि पाणरूपी नागांना पक्षी राजा ( गरुड ) आहे.
७. नवकार महामंत्राने रोग, पाणी, अग्नी, चोर, सिंह, हत्ती, युद्ध, साप यांपासूनची भये त्याचक्षणी नाश पावतात.
८. डाकीण, वेताळ, राक्षस, महामारी यांच्या भयाचा प्रभाव त्यांच्यावर किंचितही पडत नाही. नवकार ( मंत्र ) च्या प्रभावाने सर्व संकटे नाहीशी होतात.
९. ज्यांच्या हृदयरूपी गुहेमध्ये नवकारमंत्ररूपी सिंह सदा-सर्वकाळ वास करतो आहे, त्यांच्यावर अष्टकर्मग्रंथीरूपी हत्तींचा हल्ला झाला असताना त्यांचाच नाश होतो.
१०. ज्याच्या मनामध्ये जिनशासनाचा ( दर्शनाचा ) सार असलेला आणि चवदा पूर्वांचा उद्धार करणारा नवकार ( मंत्र ) आहे, त्याला संसार काय करणार ?
११. नवकाराहून दुसरा सारमूत मंत्र त्रिभुवनात नाही. म्हणून, खरोखर, दररोजच अत्यंत भक्तिभावाने त्याचे पठन करावे.
१२. जेवायच्या वेळी, शोपताना, जागे होताना, ( कोठेही ) प्रवेश करताना, भयप्रसंगी आणि संकटात, सर्व काळच खरोखर नवकार ( मंत्र ) चा जप करावा.
- ( श. मंत्राचे स्मरण करावे ).

०००

## ११. वज्जालगं

### (अ) दीन-पद्धती

१. माते, दुसऱ्याकडे याचना करण्यात गढून गेलेल्या अशा मुलास जन्म देऊ नको (आणि) ज्याने (दुसऱ्याने केलेली) याचना धुडकावून लावली आहे त्याला उदरातही थारा देऊ नयेस.
२. जोवर 'द्या' अशी याचना करत नाही, तोवरच रूप, गुण, लज्जा, खरेपणा, घराण्याची परंपरा आणि स्वाभिमान (अशा या सर्व गोष्टी) असतात.
३. 'खरोखर विधीने या जगामध्ये गवत-कापसापेक्षाही हलका असा दीन (मनुष्य) निर्माण केला आहे.' '(मग) बाऱ्याने त्याला का वाहून नेले नाही?' '(कारण) आपल्याकडे (च) याचना करेल या भीतीने.'
४. 'द्या' अशी दुसऱ्याकडे याचना करत असताना त्या (स्वाभी-मानी दीन माणसा) चे हृदय धडधडू लागते, जीभ घशात अडखळते आणि चेहऱ्यावरील तेज नाहीसे होते.
५. ढग समुद्रातील पाणी प्रयत्नपूर्वक (शोषून) घेत असता काळे-कुट्ट होतात आणि, खरे म्हणजे, (पाऊसाच्या रूपाने पाणी) देत असताना धवल होतात. (दुसऱ्याकडून दान) देणारे आणि (दुसऱ्यांना दान) देणारे यांच्यामधील (मोठे) अंतर पाह्या.

( १३ )

## ( ५ ) सिंह-पद्धती

६. कर्तव्यपराङ्मुख व स्वाभिमानशून्य अशौ अनेक पाडसे असून हरणीला काय कामाची ? हत्तीचे गंडस्थळ फोडणाऱ्या एकाच छाव्याने सिंहीन निर्घास्तपणे ओपते.
७. विशुद्ध जातीच्या त्या वनराजांना प्रणाम असो. अहाहा ! या पृथ्वीवर जे जे ( जातिवंत ) कुळात जन्मतात ते ते ( छावे ) हत्तीचे गंडस्थळ विदीर्ण करणारे होतात.
८. मोठया ( शरीराच्या ) आकाराने माणसाला मोठेपण प्राप्त होते असे समजू नका. वनराज लहान असला तरीही मोठ्या हत्तीचे गंडस्थळ विदीर्ण करतो.
९. दोघेही अरण्यात जन्मतात, ( पण ) हत्ती जखडले जातात सिंह मुळीच नाही. थोर पुरुषांच्या बाबतीत मरण संभवनीय आहे, अपमान नव्हे.

## ( ६ ) चंदन-पद्धती

१०. चंदन वाळले किंवा ( साणेवर ) घासले तरीही खरोखर तसला कसला तरी घमघमाट सुटतो की जेजेकरून ताज्याही फुलांचा हार सुगंधामध्ये लज्जित होतो.
११. कुन्हाडीच्या घावाने छेदले ( किंवा ) ( दगडावर ) घासले तरी ( सुगंध देण्याचा मूळ ) स्वभाव सोडत नाहीस, म्हणून हे चंदना, लोक मस्तक नमवून तुला बंदन करतात.

(१४)

१२. चंदना, मोठमोठ्या झाडांमध्ये तुझा जन्म उत्तम' कुळात झाला आहे. त्यामुळे साप आणि दुष्ट माणसे तुझ्यावर नेहमीच अनुरक्त असतात.
१३. विघ्नीने तशा तऱ्हेच्या चंदनाच्या झाडाला एकच दोष घडविला आहे की ज्याची संगत दुष्ट नाग एक क्षणभरही सोडत नाहीत.
१४. दुष्टाच्या संगतीने निरपराधी साधू संकटात पडावा ( श. छेदला जावा ); त्याप्रमाणे अनेक मोठाल्या झाडांमध्ये सापांच्या दोषाने चंदनाचे झाड कापले जाते.

●●●

## १२. उज्ज्वल चारित्र्याचा रावण

१. मध्यंतरी इंद्राने ज्याचा लोकपालपदावर नेमले होते तो नलकूबर दुर्लभपुरामध्ये राहत होता.
२. आता त्याने विपुल आग्नीयुक्त शंभर योजनाचे तट रचले आणि शत्रूयोद्ध्यांच्या जीवनाचा नाश करणारी अनेक प्रकारची यंत्रे (केली).
३. नंदनवनात जाऊन आणि (भक्ति) भावाने तीर्थंकर मूर्तींना (श. चैत्यांना म्ह. चैत्यालय-देवालया-तील जिन मूर्तींना) बंदन करून पुनः रावण आपल्या निवासस्थानी परत आला.
४. रावणाने शस्त्रे (घेऊन) तयार झालेल्या व चिलखत घातलेल्या सैन्यासमवेत प्रहस्तप्रमुख योद्ध्यांना दुर्लभपुरुषहस्तगत करण्यास पाठविले.
५. येताच त्यांनी चोहोबाजूंनी जळते उंच तट असलेले, यंत्रांमुळे शत्रूयोद्ध्यांना नयभीत करणारे व उलंघिण्यास अत्यंत कठिण (असे ते) नगर पाहिले.
६. आता उत्साहित राक्षसांनी सभोवती संपूर्ण नगराला वेढा घातला. शत्रू अनेक प्रकारच्या विद्या प्रयोगांनी त्यांना ठार करू लागले.

(११)

७. तैव्हा मारले जात असताना राक्षसघोड्यांनी (रावणाकडे) दूत पाठवला. जाऊन तो राजाला म्हणाला, 'प्रभू, आपण माझे (म्हणणे) ऐकावे.
८. सर्वत्र घगघगत्या अग्नीमुळे जवळ जाणारे जळताहेत आणि विकराळ मुल्ल असलेल्या यंत्राद्वारे पुष्कळसे मरताहेत.
९. हे बोलणे ऐकून अत्यंत बुद्धिशाली असे त्यावेळी (श. ज्यावेळी) लंकेश्वराचे मंत्री आपल्या सैन्याच्या रक्षणाकरिता उपाय योजू (श. चिंतू) लागले.
१०. त्यावेळी नलकूबराच्या उपरंभाराणीने रावणावर प्रेमासक्त झाल्यामुळे पाठवलेली दूती आली.
११. मस्तक नमवून प्रणाम करून दूती एकांतात रावणाकडे म्हणाली, 'स्वामी, ज्या कारणाकरिता मला पाठवले ते ऐकावे.'
१२. नलकूबर (महाराजां) ची उपरंभा नावाची प्रसिद्ध राणी आहे. खरे म्हणजे, तिने मला पाठविले आहे. माझे नाव विचित्रमाला आहे.
१३. ती अंतःकरणपूर्वक आपल्या भेटीस उत्सुक असून आपल्याशी प्रेमसंबंध घडावा असा विचार करते. आपल्या गुणांवर ती अत्यंत अनुरक्त आहे. भेट घेण्याची (श. दर्शन देण्याची) कृपा करा.'



(१७)

१४. दोनही कानांवर (हात) ठेवून रत्नभवापुत्र (रावण) असे म्हणाला, 'रूपवती असलेल्याही वेश्या आणि परस्त्रीकडेही मी पाहत नाही.
१५. दृढ चारित्र्यशील राजाने उष्ट्या जेवणाप्रमाणे इह व परलोक (नियमा) विरुद्ध असलेल्या परस्त्रीचा सदासर्वकाळ त्याग करावा.'
१६. दूतीकार्य जाणून त्याबाबतीत कुशल मंत्री म्हणाले. 'आत्महिताचा विचार करणाऱ्यांनी (प्रसंगी) खोटही बोलावे.
१७. स्वामी, संतुष्ट झालेली स्त्री कदाचित नगराचा भेद सांगेल. स्त्रूप सन्मान केल्यावर ती सद्भावपरायण होईल.'
१८. 'असे (होऊ दे)' असे म्हणून रावणाने दूतीलाही पाठविले. जाऊन तिने ( रावणाचा ) सधें संदेश स्वामिनीला सांगितला.
१९. दूतीचे बोलणे ऐकून उपरंभा लगेच निघाली. ती रावणाच्या निवासपाशी आली. तेथे प्रवेश करून ती आनंदाने (आसनावर) बसली.
२०. रावण म्हणाला 'भद्रे, येथे अरण्यात वसले रति सुख ! दुर्लभपुर (म्ह. राजवाडा) सोडून ते माननीय होणार नाही.'
२१. ते मधुर कामोत्तेजक बोलणे ऐकून कामातुर झालेल्या त्या (उपरंभे) ने त्याला आशालिका विद्या दिली.
२२. ती विद्या मिळवून सर्व सैन्य समूहासह दुर्लभपुराजवळ

(३४)

जाऊन रावणाने दुर्ग सर केला.

२३. रावणाने येऊन दुर्ग सर केल्याचे ऐकून अभिमानाने नलकू-  
बरराजा लगेच बाहेर पडला.
२४. आता दोन्ही बाजूंनी बाण, शक्ती, भाले, तोमस फेकल्या  
जाणाऱ्या युद्धात तो राक्षसांबरोबर युद्ध करू लागला.
२५. आता मोठमोठ्या योद्ध्यांचे जीवन नष्ट होणारे भयंकर  
युद्ध चालू असताना समरांगणात विभीषणाने नलकूबर-  
राजाला पकडले.
२६. लंकेश्वराने उपरंभेला म्हटले, 'भाद्रे, तू माझी गुरू आहेस.'  
कारण आशालिका नावाची बलसमृद्ध विद्या तू मला दिलीत.
२७. उत्तम कुलामध्ये निर्माण झालेली तू सुंदरीच्या पोटी जन्म-  
लीस. तू आकाश ध्वजाची कन्या आहेस. शीलरक्षण कर-  
णारी हो.
२८. भाद्रे, रूपलावण्ययुक्त तुझा प्रिय ( पती, अद्यापीही जिवंत  
आहे. याच्याशी दीर्घ काळ विशिष्ट भोगांचा उपभोग थे.)
२९. रावणाने मत्कार करून नलकूबरराजाला सोडले. (रावणा-  
बरोबर झालेला ) संबंधदोष माहित नसलेला तो तिच्या  
बरोबर ( विषयोपभोग ) भोगू लागला.

०००

## १३. बोधिदुर्लभकथा

१. यथेव सागरदत्त नावाचा धनसंपन्न असा श्रेष्ठी होता. तो नेहमीच धनाचे रक्षण व अर्जन करण्यामध्ये अतिशय तत्पर असे.
२. आता एकदा तो आपल्या सोहड मुलाशी विचारविनिमय करू लागला, तो असा, 'बाळ, ही संपत्ती कष्टाने मिळविली आहे. हे तूही जाणतोस.
३. म्हणून हिचे घराबाहेर दूर रक्षण करू या. घरी ठेवली अज्ञता ती सर्व लोकांच्या स्वाधीन होईल.
४. तेव्हा स्मशानात जाऊन कोठेतरी गुप्त ठिकाणी ती पुरू या. म्हणजे संकटात पडल्यावर ती आम्हाला साहाय्य करेल.'
५. अशारीतीने एकांतात विचार विनिमय करून मुलाबरोबर तो स्मशानात गेला. मोठा खड्डा खणून तेथे द्रव्याचे कलश पुरले.
६. तेव्हा खड्डा भरून श्रेष्ठी मुलास असे म्हणाला, 'बाळ, जाऊन तू सर्वच दिशामंडळ पाहा.'
७. यदाकदाचित ( हे ) कोणीतरी पाहिले असावे. तो म्हणाला, बाबा, 'आपण चतुर आहोत. येथे अत्यंत भयानक स्मशाबात रात्री कोण येणार ?'

(४०)

८. तेव्हा पिता म्हणाला, 'बाळ, चांगली पाहणी केल्यास येथे कोणता तोटा (श. दोष) होणार आहे ?' असे म्हटल्यावर मुलाने जाऊन सर्व न्याहाळले.
९. तेव्हा मेल्याचे सोंग घेऊन निश्चेष्ट पडलेला व श्वास रोखून द्रव्याच्या ठिकाणी पाहत असलेला भिकारी दिसला
- १०, ११. त्याने येऊन सांगितले, 'श्वास नसलेला कोणीतरी तेथे (पडला) आहे.' तेव्हा श्रेष्ठीही म्हणाला, 'पण जर का तो द्रव्यलोभाने श्वास रोखून मेल्याचे सोंग घेऊन पडला असेल, तर सुरीने त्याचा कोणता तरी अवयव कापून लौकर ये.'
१२. असे म्हटल्यावर तो कान कापून आला. तेव्हा तो म्हणाला, 'कदाचित पुनः तो धूर्त हे सहन करील. ( तेव्हा ) दुसराही कान काप.'
१३. त्यानेही तसेच केले. ओठाबरोबर नाकही कापले. त्यानेही घनाकरिता सर्व सहन केले. कारण असे म्हटले आहे.
१४. माणसे (श. प्राणी) घनाकरिता जे करणार नाहीत असे साहस नाही. ते स्वतःचे जीवनही वेचतील. मग शरीर. छेदनाविषयी काय (सांगावे) ?
- १५, १६, १७. तेव्हा भिकार्याला मढे समजून तो श्रेष्ठी मुला सह घरी गेला. भिकार्यानेही येथून झटदिशी उठून ते द्रव्य घेतले व दुसरीकडे दडविले. (त्यातील) किती तरी घेऊन तो नगरात गेला. त्याने कपडे, चंदन, कापूर, वगैरे घेतले. झिरझिरीत वस्त्राने कापलेले अवयव झाकून तो वेष्ट्यांच्या घरांमध्यें विलास करू लागला.

(४१)

१८. आता एकदा खरोखर तोही बागेत मेला. तेथे आपल्या बरोबर त्याने मोदक, मांडे, वडे वगैरे नेले.
१९. त्याने नगरातील सर्वच गरीबांना बोलावले आणि तो आनंदाने त्यांना भोजन, वस्त्रादि सर्व देऊ लागला.
२०. तसेच तो याचकांना, हवे ते मागणाऱ्यांना, दीनादींनाही यथेच्छ (देऊ लागला). संतुष्ट झालेले तेही खरोखर कर्णाचे नाव घेऊन (त्याची) स्तुती करू लागले.
२१. तेव्हा लोकपरंपरेने (म्ह. कर्णोपकर्णी) ते ऐकून श्रेष्ठीला त्याची शंका आली. 'याने त्या ठिकाणाहून माझे द्रव्य तर घेतले नसेल ना ?
२२. पण जर तो भिकारी त्यावेळी श्वास रोखून स्तब्ध असेल. ( तर त्याने निश्चित द्रव्य घेतले असेल ).' असा विचार करीत तो त्यासच पाहण्यासाठी तेथे गेला.
२३. त्याने केशराने पिंगट झालेल्या, वेश्या सभोवती असलेल्या आणि उत्तम (झिरझिरीत) वस्त्राने कापलेले ओठ, नाक, ( कान ) झाकलेल्या त्यास पाहिले. तेव्हा त्याने विचार केला.
२४. 'जे द्रव्य कष्टाने मिळवले जाते त्याचा कष्टाने उपभोग घेतला जातो. प्रायः चोर, दरबडेखोरांचे चारित्र्य अशा-तऱ्हेचे असते.

(४२)

२५. असा विचार करून तो स्मशानात गेला व दोन कलशानी विरहित असा त्याने तो खड्डा पाहिला. तेव्हा तो अभिक्क शोक करू लागला.

२६. 'हाय रे देवा ! पुण्यविहीन अशा माझे द्रव्य कसे नाहिसे झाले ? कोणातरी विद्वानाने जे असे म्हटले आहे ते खरेच आहे.

२७. मी दान दिले नाही. निरनिराळ्या प्रकारांनी सुखोपभोग भोगले नाही. द्रव्य नाहीसेच झाले. तेव्हा मी राजदरवारी जातो.

२८, २९. मी राजाला सर्व सांगतो. खरोखर कदाचित तो याच्या कडून द्रव्य देववेल.' तेव्हा त्याने नजराणा देऊन राजाला सांगितले ते असे, 'महाराज, जो वागेमध्ये अनेक प्रकारांनी विलास करतो आहे, तो निश्चितपणे चोर आहे. याने स्मशानातून खणून माझे द्रव्य घेतले आहे.'

३०. हे ऐकून राजाने कोतवालास आज्ञा केली ती अशी, 'ताबड तोब त्या अट्टल चोराला बांधून माझ्यापाशी आण.'

३१. त्यानेही तसेच केल्यावर चोर म्हणाला, 'भाशा कोणता दोष ?' राजा म्हणाला, 'तू याचे द्रव्य खणून घेतलेस.'

३२. तो म्हणाला, 'महाराज, याने माझे काही घेतले आहे. ते द्यावयास लावा. मग मी याला द्रव्य देईन.'

३३. राजाने दृष्टिक्षेप केल्यावर तो व्यापारी सांगू लागला, 'मी

(४१)

माझे काहीही घेतले नाही.' तेव्हा चोर असे म्हाणला.

३४. 'महाराज, वाट (चाली) च्या श्रमाने खिन्न होऊन मी गाढ झोपलो होतो. यानेच माझे नाक, (ओठ) आणि कान कापले.

३५, ३६. 'तेव्हा याने माझे कान, बगैरे देऊन आपले द्रव्य घ्यावे.' असे म्हटल्यावर तो श्रेष्ठी आश्चर्याने (स्तब्ध) राहिला. 'श्रेष्ठी, जेव्हा यास कान, बगैरे देशील, तेव्हा ते द्रव्य तुला मिळेल.' असे म्हणून राजाने दोघांनाही तेथून (च. येथून) (वाहेर) घालविले.

३७. तेव्हा वैराग्य उत्पन्न झालेला श्रेष्ठी घरी येताच मुलाला उपदेश करू लागला, 'बाळ, ज्याप्रमाणे क्षणात संपत्ती गेली, तसे जीवन जाईल.

३८. जगामध्ये प्राण्यांना जन्मातून म्हातारपण आणि म्हातारपणातून मरण निश्चित येते. म्हणून मृत्यूच्या मुखात गेलेले जीव थोडे दिवस जगतात.

३९. तेव्हा जर ते सद्धर्माची शिंदोरी घेऊन परलोकाला जातील तर तेथे गेल्यावर निश्चितपणे त्यांना शोक करावा लागणार नाही व ते सुखी होतील.'

० ० ०

## १४. अगडदत्ताचा सन्मान

१. एके दिवशी तो राजकुमार घोड्यावर बसून घोड्याच्या मैदानाच्या रस्त्यावरून जात होता; तेव्हा (वाराणसी) नगरीत गलबला झाला. आणि तसेच (त्याला वाटले) -
२. 'समुद्र खवळला आहे का ? किंवा भयंकर अग्नी भडकला आहे ? किंवा शत्रू सैन्य (चालून) आले ? किंवा बीज पडली ?'
- ३,४. इतक्या अवधीत राजकुमाराने, बांधलेला प्रचंड खांब मोडून ( आलेला ), निष्कारण क्रोधाविष्ट झाल्याने माहुताने ( निरुपाय होऊन ) सोडलेला, कृतांतकाळाप्रमाणे सोडेच्या टापूत येणाऱ्यांना ठार करीत समोरून येत असलेला, एक मदोन्मत्त हत्ती अवचितपणे आश्चर्यचकित मनाने पाहिला.
५. पायांना बांधलेला दोरखंड तोडून घरे, बाजारातील दुकाने, देवालये विध्वंस करीत तो प्रचंड ( हत्ती ) क्षणात राजकुमारासमोर आला.
६. त्या तशा तऱ्हेच्या रूपसंपन्न कुमाराला पाहून नागरिक गंभीर आवजाने ओरडले, 'दूर हो, हत्तीच्या मार्गातून दूर हो.'
७. कुमारानेही चालण्याच्या गतीत अत्यंत चतुर असलेल्या आपल्या घोड्यास सोडून इंद्राच्या ऐरावतासारख्या असलेल्या गजराजाला हाकारले.



(४५)

८. कुमाराची गर्जेना (श. शब्द) ऐकून (गंडस्थळातून) मदरसाचा प्रवाह झरत असलेला तो संतापलेला हत्ती कृतांतकाळा-प्रमाणे कुमारावर वेगाने धावून आला.
९. कुमाराने हर्षित मनाने (अंगावर) धावत येणाऱ्या हत्तीच्या सोंडेसमोर वस्त्र गुंडाळून फेकले.
१०. क्रोधाने धुमसत असलेला तो (हत्ती) आपल्या दातांनी त्यावर आघात करू लागला आणि कुमारही त्याच्या पाठीवर दड मूठीचे प्रहार करू लागला.
११. तेव्हा क्रोधाने धुमसत असलेला तो मागे पळू लागला' (पुढे) धावू लागला, चालू लागला, (अडखळत पडू) लागला, तसेच खाली वाकला आणि गोलाकार फिरू लागला.
१२. त्या श्रेष्ठ हत्तीला खूप वेळ अतिशय खेळवून व आपल्या आघीन करून नंतर तो त्याच्या खांद्यावर चढला.
१३. आता सर्व नागरिकजनांना आकर्षक वाटणारा तो गजेंद्रा-बरोबर चाललेला (कुमाराचा) खेळ अंतःपुरा (तील स्त्रियां) सह राजाने पाहिला.
- १४, १५. राजाने देवेंद्राप्रमाणे हत्तीच्या खांद्यावर वसलेल्या कुमारास पाहून आपल्या सेवकलोकांना विचारले, 'गुणांचा आगर असलेला, तसेच तेजाने सूर्य, सौम्यपणाने चंद्र, सर्व कला व आगम (शास्त्रा)त कुशल, बोलण्यात चतुर, शूर आणि रूपवान असा हा कोण वरे कुमार ?'
१६. तेव्हा एका (सेवका) ने सांगितले, 'महाराज, तेथे कला

(४६)

(शिकविषान्या) आचार्यांच्या घरी हा कलेकरिता परिश्रम करीत असताना मला दिसला.

१७. तेव्हा हार्षित होऊन राजाने कलाचार्यांना (बोलवून) विचारले, 'श्रेष्ठ हत्तींना ( वश करण्याच्या ) शिक्षणामध्ये अत्यंत निपुण असलेला कोण हा पुरुषोत्तम ?'
१८. कलाचार्यांनी अभय मागून पुष्कळ लोकांसमवेत असलेल्या राजाला राजकुमाराची हकिगत सबिस्तर सांगितली.
१९. ती ऐकून आपल्या मनामध्ये अतिसंतुष्ट झालेल्या राजाने 'कुमाराला माझ्यापाशी आण', (म्हणून) द्वारपालास पाठवले.
२०. आता द्वारपालाने हत्तीच्या पाठीवर विराजमान झालेल्या त्याला म्हटले, 'कुमार, महाराज बोलावीत आहेत, राज-वाड्यात या.'
२१. नंतर राजाज्ञेनुसार हत्तीला खांबाला बांधून संशयित मनाने कुमार राजापाशा आला.
२२. आपले गुडघे, हात व मस्तक जमिनीवर टाकून अत्यंत विनयाने त्याने प्रणाम केला नाही तोच राजाने त्याला आलिंगन दिले. तेव्हा राजाने विचार केला, 'हा पुरुषोत्तम आहे. कारण
२३. 'विनय पुरुषत्वाचे मूल आहे, उद्योग वैभवास कारण आहे, धर्म सुखाचा मूल (मंत्र) आहे आणि अहंकार विनाशास कारणीभूत आहे.

(१७)

आणि पुनः

२४. मोरास कोण चितारतो ? (म्ह. मोरास चित्र विशिष्ट सौंदर्य कोण देतो ? ) राजहंसांना (डोलदार) चाल कोण देतो ? कमळांना कोण सुगंधित (करतो) ? कुलवान (घराण्यात) जन्मलेल्यांना विनय कोण (शिकवतो) ?  
आणि तसेच

२५. साळी (च्या लोंढ्या कणसाच्या) भाराने, ढग पाण्याने, झाडांचे शेंडे फळांच्या बहराने आणि सत्पुरुष विनयाने नम्र होतात; ( पण ) खरोखर कोणाच्याही भीतीने नव्हे.

२६. पानाचा विडा, (उत्तम) आसन, सन्मान, पारितोषिक, आदर, इत्यादींनी अत्यधिक सत्कार केल्यामुळे प्रसन्न मनाने कुमार राजाजवळ बसला.

० ० ०

## १५. आत्मस्वरूप

१. खरे म्हणजे ज्याप्रमाणे तिलामध्ये तेल किंवा फुलामध्ये सुमंघ परस्परांमध्ये एकरूपच झाले आहेत; त्याचप्रमाणे शरीर व जीवांच्या बाबतीत (ते एकरूप झाले आहेत).
२. ज्याप्रमाणे स्निग्ध (म्ह. तेलकट) शरीरावर धूळ लागली म्हणजे ती दिसतच नाही; त्याचप्रमाणे रागद्वेषाने स्निग्ध बनलेल्या जीवांमध्ये (बद्ध झालेले) कर्म (दिसून येत नाही).
३. ज्याप्रमाणे जीव जात असताना जेथे तो जातो (तिकडे) शरीरही जाते; त्याप्रमाणे जीवाच्या आश्रयाने मूर्त कर्मही जात असते.
४. ज्याप्रमाणे मोर उडताना पिसारा धेऊन जातो; त्याप्रमाणे खरे म्हणजे कर्मसमूहासमवेत जीवही जातो.
५. ज्याप्रमाणे कोणी सामान्य मनुष्य स्वतः स्वयंपाक करून ते (अन्न) जेवतो; त्याप्रमाणे जीवही स्वतःच केलेले कर्म स्वतः भोगतो.
६. ज्याप्रमाणे विस्तीर्ण सरोवरात मंद वाऱ्याच्या झुळकीने हळू (रोपटं) फिरते, त्याप्रमाणे कर्माने आहत झालेला जीव संसारसागरात भटकतो.
७. ज्याप्रमाणे एखादा मनुष्य पडक्या घरातून बाहेर पडून नवीन

(४९)

घरामध्ये जातो; त्याप्रमाणे जीव जुने शरीर टाकून (दुसऱ्या नव्या) शरीररात जातो.

८. ज्याप्रमाणे मेणा (च्या लेपा) ने झाकलेले रत्न आत तेजाने झळाळत असते; तसाच काहीसा कर्माच्या ढिगात झाकलेला जीवही खरोखर (आत तेजाने चमकत अललेला) जाणावा.
- ९,१०. ज्याप्रमाणे दिवा अत्यंत विशाल उंच व भव्य वाड्यालाही प्रकाशित करतो आणि (छोट्या) वेष्टनाच्या पात्रात ठेवला असताना केवळ तेवढेच (पात्र) प्रकाशित करतो; त्याचप्रमाणे जीव लक्षावधी श्वासोच्छ्वास (एकदम) करणाऱ्या विशाल शरीरालाही सजीव करतो (आणि) पुनः (क्षुद्र असलेल्या) कुंथूच्या शरीरात गेला असताना तेवढ्या नेच संतुष्ट होतो (म्ह. तेवढ्या आकाराचाच राहतो).
११. ज्याप्रमाणे आकाशातून वाहत असताना वारा लोकांना दिसत नाही; त्याप्रमाणे, जीवही संसारात भटकत असताना झोळ्यांना दिसत नाही.
१२. ज्याप्रमाणे घरामध्ये घुसत असताना दार (झाकल्या) मुळे खरोखर वारा आडवता येतो; त्याप्रमाणे, हे जीव, (देह) घरातील इंद्रियदार (झाकून) (म्ह. इंद्रियनिग्रह करून) पापाला आडव.
१३. ज्याप्रमाणे ज्वालासमूहाने भडकलेल्या अग्नीने तृणकाष्ठ जाळता येते; त्याप्रमाणे ध्यानयोगाने जीवाचे कर्ममलही जाळता येते.
१४. ज्याप्रमाणे बीज व अंकुराची कार्यकारणे जाणता येत नाहीत;

(५०)

त्याप्रमाणे जीव व कर्मांची अंतकाळातील एकरूपता (जाणता येत नाही).

- १५.१६. ज्याप्रमाणे धातू व कीट एकत्र निर्माण झाले असताना अग्नीच्या योगाने कीटमल जाळून आता सुवर्ण निर्मळ करता येते; त्याचप्रमाणे अनादिकालापासून ( एकत्र ) असलेल्या जीव-कर्मांच्या बाबतीत ध्यानयोगाने कर्मकीट नष्ट करून आता जीव विशुद्ध करता येतो.
१७. ज्याप्रमाणे चंद्रकिरणांच्या योगाने निर्मळ चंद्र ( कांत )-मणी पाणी पाझरतो; त्याप्रमाणे जीव सम्यक्त्व प्राप्त करून कर्ममल सोडून देतो.
१८. ज्याप्रमाणे सूर्याने तप्त झाला असताना सूर्य (कांत)मणी अग्नी सोडतो; त्याप्रमाणे खरोखर स्वतः तपाने तप्त ( श. शोषित ) झालेला जीवही अनंतज्ञान प्रकट करतो (श. ज्ञान मिळवितो).
१९. ज्याप्रमाणे चिखलाचा लेप ( धुवून ) गेलेला भोपळा लगेच पाण्यावर (तरंगत) राहतो; त्याप्रमाणे सर्व कर्मा-पासून सुटलेला जीवही लोकाग्राच्या ( सिद्धशिले )वर (अनंत चतुष्टयांच्या तेजाने झळाळत) विराजमान होतो.

० ० ०

## १६. कर्पूरमंजरीचा शृंगार

राजा--आता अंतःपुरात नेऊन राणीने तिला काय केले ?

विचक्षणा--महाराज, तिला स्नान घातले, (कुंकुम) तिलक लावला,  
(वस्त्रालंकारांनी) नटविले आणि खूप वेले.

राजा--कसे वरे ?

विचक्षणा--१. केशराच्या रंगाची दाट उटी लावून तिचे शरीर  
पिवळे जर्द केले

राजा--म्हणजे सुवर्ण मूर्तीचे रूप घासून स्वच्छ उजळले.

विचक्षणा--२. मैत्रिणींनी तिच्या पावलावर मरकतरत्नांनी जडव-  
लेली पंजणाची जोडी घातली.

राजा--म्हणजे खाली तोंड करून ठेवलेल्या दोन लाल कमळांभोवती  
भ्रमरांची रांग (गुंजारव करीत) फिरू लागली.

विचक्षणा--३. पोपटराजाच्या शेपटीसारखी ( हिरवट ) मिळी  
रेशमी वस्त्रांची जोडी ( म्ह. शालू व शाल ) तिला  
नेसवली.

राजा--म्हणजे बाऱ्याच्या झुळूकेमुळे कोळीच्या झाडाची कोवळी

(५१)

पाने (श. पानांची टोके) फडफडू लागली.

विचक्षणा-४. तिच्या विस्तीर्ण ( डोलदार ) नितंबावर पसराय-  
रत्नांनी जडवलेला मासपट्टा घातला.

राजा-म्हणजे सुवर्णपर्वताच्या कड्यावर मोराला नाचायला लावले.

विचक्षणा- ५. तिच्या हस्तकमलातील देठाप्रमाणे असलेल्या  
मनगटावर काकणे घातली.

राजा-मग कामदेवाच्या (बाणांचा) भाता उलटा शोभतो आहे  
असे का म्हणत नाहीस ?

विचक्षणा-६. तिच्या गळ्यात सहा मासे (बजनाच्या) मोत्यांचा  
सुंदर हार घातला.

राजा-म्हणजे तारकांचा मेळावा ओळीने तिच्या मुखचंद्राची सेवा  
करीत आहे.

विचक्षणा- ७. तिच्या दोनही कानांमध्ये रत्नजडित फुलांची  
जोडी घातली.

राजा-म्हणजे तिच्या चेहऱ्याच्या रूपाने कामदेवाचा रथ दोनही  
चाकावर चालवला जात आहे.

विचक्षणा-८. तिचे डोळे उत्कृष्ट काजळ घालून सुशोभित केले.

राजा-म्हणजे पाच बाण धारण केलेल्या (कामदेवा)स निळ्या



(५१)

कमळाच्या रूपाने नवा तीर (च) अर्पण केला.

विचक्षणा-९. तिच्या कुरळया केसांच्या बटा भाल प्रदेशाच्या टोका.  
जवळ गुंफल्या.

राजा-म्हणजे चंद्रबिबावर मध्यभागी हरिण ( उभा ) आहे.

विचक्षणा-१०. कापराप्रमाणे चमकदार डोळे असलेल्या तिच्या  
केशसंभारात फुलांचा गजरा घातला.

राजा-म्हणजे त्या हरिणाक्षीने चंद्रमा व राहुदेत्य या ( दोघा )  
मल्लामधील झुंजच दाखवली.

विचक्षणा-११. अशा तऱ्हेने राणीने आपल्या मनाप्रमाणे (सौंदर्य)  
प्रसाधनांनी त्या युवतीला सजविले.

राजा-म्हणजे क्रीडोद्यानाची भूमी वासंतिक वैभवाने सुखोभिन्न  
केली.

० ० ०

## १७. प्रवचनसार

१. जागृत राहा. (अज्ञान निद्रेतून) का जागे होत नाही ? मृत्यू-नंतर, खरे म्हणजे, आत्मजागृती होणे कठिण आहे. (गेलेले) दिवस (श. रात्री) परत येत नाहीत. (मानवी) जीवन पुनः मिळणे (तितके) सहज नाही.
२. जन्म मरणासमवेत, तारुण्य म्हातारपणाबरोबर आणि वैभव विनाशासह प्राप्त होते. असे सर्व क्षणभंगुर जाणा.
३. संसाररूपी अरण्यात ज्या जीवरूपी हरिणाला त्या मृत्यू-रूपी सिंहाने (झडप घालून) पकडले आहे; त्यास सोडवण्यास स्वजन, देव आणि इंद्रही समर्थ नाहीत.
४. ज्याची मृत्यूशी मैत्री आहे, जो ( त्याच्यापासून ) पळून (स्वतःला वाचवू म्हणतो) आणि 'मी मरणास नाही' असे जाणतो, त्यानेच खरोखर (धर्माचरण) उद्या करावे अशी इच्छा बाळगावी.
५. (साधकाने) जगण्याची अभिलाषा बाळगू नये. मरणाचीही प्रार्थना करू नये. जीवन आणि तसेच मरण या दोघांमध्ये त्याने आसक्ती दाखवू नये.

(५५)

६. यदाकदाचित् कोणी विषाचा रस न दिसेल असा गपचिप पिऊन टाकतो. तो त्यापासून मरणार नाही का ? ( तसेच जरी कोणी गुप्तरीत्या कोणाला नकळत पापाचरण केले, तर तो त्यापासून दूषित होणार नाही का ? )
७. धैर्यवानांलाही मरावे लागते, भ्याड पुरुषालाही निश्चित मरावे लागते. खरोखर दोघांनाही मरावे लागते. खरे म्हणजे ( शांतपणे ) धैर्याने मरणे चांगले.
८. पुत्रस्त्रीकरिता पापबुद्धीने धन मिळवून दया-दान सोडून देणारा तो मनुष्य ( श. जीव ) संसारामध्ये ( सतत ) भटकत राहतो.
९. जो दुसऱ्याची निंदा करून स्वतःला ( गुणवान ) प्रस्थापित करू इच्छितो, तो दुसऱ्याने कडू औषध पिले असताना ( स्वतः ) निरोगी होण्याची इच्छा करतो.
१०. ( धनधान्याने परिपूर्ण असलेली ) ही पृथ्वी संपूर्णपणे एखाद्याला दिली, तरी त्यानेही तो संतुष्ट होणार नाही. अशारीतीने जीवाच्या ( इच्छा ) पुऱ्या होणे अत्यंत कठिण आहे.
११. बाहेर पेटलेला अग्नी पाण्याने विझवता येणे शक्य आहे. सर्व सागरातील पाण्यानेही मोहरूपी, अग्नीचे निवारण करणे महा कठिण आहे.
१२. आडमार्गाने जाणाऱ्या मनरूपी हत्तीला ज्ञानरूपी

(५६)

अंकुशाने रोखा. आडमार्ग स्वीकारून त्याने शीलरूपी उपवन उध्वस्त करू नये.

१३. जसा काळा कोळसा दुधाने धुतल्याने पांढरा होत नाही, तसे पापकर्मांनी मलिन झालेली (माणसे) (गंगेच्या) पाण्याने शुद्ध होत नाहीत.

१४. जो प्राणीवध करीत नाही, खोटे बोलत नाही, चोरी करीत नाही आणि परस्त्रीकडेही जात नाही, त्याच्या घरीच गंगाकुंड असते.

१५. ज्याने केव्हाही शील भ्रष्ट होऊ दिले नाही, त्याला (च) पंडित म्हणतात. तो (च) शूर वीर योद्धा होय की ज्याने इंद्रियरूपी शत्रूंना जिंकले आहे.

१६. जो स्थळ व समय (ओळखून) प्रियवचन बोलायला जाणतो, तो सर्वानाच पूजनीय असून सर्वांच्याच हृदयाचा आसरा होतो.

१७. तो (माणूस) हातात दिवा असताना जर (डोळ्याचा उपयोग न केल्यामुळे) विहिरीत पडला, तर तो दिवा त्याला काय करणार? जर (श्रुतज्ञानाचे) शिक्षण घेऊन (त्याप्रमाणे आचरण न करता) चारित्र्य भंग केले तर त्याला शिक्षणाचे काय फळ? (ते ज्ञान चारित्र्याभावी त्यास कधीही सद्गतीस नेणार नाही. )

(५७)

१८. काचेच्या मण्यात गुंफलेले वैडूर्यरत्न तेथे दीर्घकाल राहूनही आपल्या श्रेष्ठ गुणामुळे काचेचे रूप धारण करीत नाही. (सदाचारी उत्तम पुरुषाचे जीवन असेच आहे.)
१९. ज्याप्रमाणे चंदनाचा भार वाहणारे गाढव भाराचा भागीदार असते, खरोखर चंदनाच्या (सुवासाचा) नव्हे; त्याप्रमाणे खरोखर चारित्र्यहीन असलेला ज्ञानी ज्ञानाचा भागीदार आहे, सद्गतीचा नव्हे.
२०. (सम्यक्) ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य आणि तसेच तप या मार्गांचे अनुसरण करणारे जीव उत्तम (मोक्ष) गतीला जातात.
२१. दूध पाण्यामध्ये मिसळले असता, हंस जिभेच्या आम्लपणामुळे पाणी सोडून दूध पितो; त्याप्रमाणे सुशिष्य (दुर्गुण सोडून सद्गुण ग्रहण करतो).
२२. जे उद्याला करावयाचे ते त्वरित आजच करा, (प्रत्येक) क्षण अनेक संकटांनी (भरलेला) आहे; (तेव्हा) दुपारची वाट पाहू नका.
२३. '(येथे) चांगलाच (माल) मिळतो', अशी सर्व (दुकानदार) आपल्या मालाची घोषणा करतात. खरेदी करणाऱ्यानेही चांगली परीक्षा करून उत्तम (माल) घ्यावा.
२४. जो जीव (स्वशुद्धात्मतत्त्वाच्या लब्धिस्वरूप) विद्यारथात

(५८)

बडून मनहूयी रथ जाण्याच्या मार्गामध्ये विहार करतो;  
तो जिनेश्वरांच्या ज्ञानाची प्रभावना करणारा ज्ञानी  
सम्यग्दृष्टी जाणावा.

२५. ज्याला शत्रू व बांधवजन सारखे आहेत, जो सुख व दुःख  
समान मानतो, जो प्रशंसा व निंदेविषयी समता धारण  
करतो, ज्याला (मातीचे) ढेकूळ व सोने सारखे आहे आणि  
जो जीवन व मरणाला समान मानून (प्रसन्न मन्त्रने तोंड  
देतो), तो (च खरा) श्रमण होय.

२६. ज्याप्रमाणे दिवा (आपल्या स्पर्शाने) शेकडो दिव्यांना प्रका-  
शित करतो; (आणि, तो (ही) दिवा प्रकाशित असतो;  
(त्याप्रमाणे) दिव्या समान असलेले आचार्य (ज्ञानज्योतीने)  
स्वतःला व दुसऱ्यांना प्रकाशित करतात.

२७. ज्याप्रमाणे रात्र संपल्यावर (म्ह. सकाळी) सूर्य अखिल  
भारताला प्रकाशित करतो; त्याप्रमाणे आचार्य श्रुतज्ञान,  
चारित्र्य व बुद्धिमत्तेने देवांमध्ये तसा इंद्र जसा (शिष्य-  
मंडळामध्ये) चमकतो.

२८. ज्याप्रमाणे सुई ससूत्र (म्ह. दोरा ओवलेली) असल्याने  
(विस्मृतीच्या वगैरे) प्रमाददोषाने हरवत नाही; त्या-  
प्रमाणे ससूत्र (म्ह. श्रुतज्ञानाने युक्त) असलेला (साधु)  
पुरुष प्रमाददोषाने (संसारगतीत पडून) नाश पावत नाही.  
(कारण तो तपाचरण करण्यास समर्थ नसूनही सरळ

(५९)

भावनेने निरंतर स्वाध्याय करीत असल्यामुळे कमंक्षय करतो.)

२९. सदासर्वकाळ उद्यत असलेले राग, द्वेष, मोह व इंद्रियचोर सत्पुरुष (साधका)ने सुरक्षिलेले ( तपो ) नगर विध्वंस करू शकत नाहीत.
३०. धर्म उत्कृष्ट मंगल प्रगून अहिंसा, संयम व तपाने युक्त आहे. ज्याचे मन सदासर्वकाळ धर्माति लीन असते त्यास देवही वंदन करतात.
३१. तीर्थकरांनी सर्व विश्वाला हितकर असा धर्म हितोपदेशिला आहे. तो स्वीकारणारी ( व त्याप्रमाणे आचरण करणारी ) विशुद्ध मनाची माणसे या जगात धन्य होत.

● ● ●

## शुद्धीपत्रक

पान	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	या (नेमि०	(या नेमि०
	१०	किंवा (नेमि०	(किंवा नेमि०
	११	वैशिष्ट्य	वैशिष्ट्य
	१३	काविलिय	काविलियं
२	४	खुडुलए	खुडुलए
	८	सावि	सा वि
	११	दत्तफुल्लाणं	पत्तफुल्लाणं
	१३	वदन्ति	वद्वविही
	१४	आयं ति	आमं ति
	१५	इमेण वि	इमेण वि
४	१५	कोडि	'कोडि
	१६	पज्जत्तं	'पज्जत्तं
५	३	बोधपरक	बोधपर
	४	लिखी है ।	लिखी हैं ।
	१४	तोलनिक	तौलनिक
६	१७	संग्रहाचे	संग्रहाचे
	१८	मध्ये	मध्ये
	१३	से ठिया	ते ठिया
	१८	पत्ता	पत्ता ।
	१९	साहिय	साहिय-
१२	५	पत्नीचा	पत्नीचा
	२२	पज्जुवासिउं	पज्जुवासिउं
१३	४	परिच्छय	'परिच्छय
	९	धम्मा	धम्मो
	२२	कालाहला	कोलाहलो.
१४	१	बीड्य सीए	सीड्यं मे
१५	१	स प्राचीन	इस प्राचीन
१६	५	जमलगन्ध-	'जमलगन्ध-
	८	मा णे	मा ते



## ( २ )

पान	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१०	पुत्तभंडेहि ।	पुत्तभंडेहि ।'
१८	२२	गणि वायगविरइयावसु०	गणिवायगविरइया वसु०
१९	१	नामकधर्म कथा	नामक धर्मकथा
	८	५५८	८५८
२०	२	समुच्छलिय०	समुच्छलिय०
२१	१२	रक्खिओ ।	रक्खिओ,
२२	११	असल्या मुळे	असल्यामुळे
	१२	णिंकरच्या	तीर्थंकरांच्या
२४	७	जइयव्वं	' जइयव्वं
२५	३	भो लिखी	भो लिखी
	५	धर्मप्रवृत्त	धर्मप्रवृत्त
२७	६	संपुण्ण०	संपुण्ण०
२८	६	' एसा निवो	' एसो निवो
२९	५	मणमाणंदइ त्ति	मणमाणंदइ' त्ति
	६	अग्गआ	अग्गओ
३०	१०	उपयनराजा	उदयनराजा
	१५	कालद्रष्ट्याचा	कालदृष्टीने
	१६	अग्रपूजेचा	अग्रपूजेचा
३१	१	पुराण्यांचा	पुराव्यांचा
३२	८	अधिकं	अधिगं
३३	१२	सव्वजणमणो—	सव्वजणमणा—
	१६	वासवदत्ता अय्ये	वासवदत्ता—अय्ये,
३४	१७	सव	सर्वे
३६	३	पाहून	पाहून
३७	१४	उच्चकैः	उच्चकैः)
३८	१३	किओ	किओ ।
	१५	पाहावेण	पहावेण
	१७	पाहाओ	पहावो

( ३ )

पान	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०	५ १६	बृद्धनमस्कार परमभतीए	बृद्धनमस्कार परमभत्तीए
४१	१२ १४	सोदार मनघ्य	सोयार मनुघ्य
४६	१ २ १९	इंदेणलोगपालते परिव्वसइ उवरंभाए	इंदेण लीगपालते परिव्वसइ उवरंभाए
४७	५ १०	पेमसंबंधा दृढसीलजुत्तणं	पेमसंबंधा दढसीलजुत्तेणं
४८	१२	जंदेसि	जं देसि
४९	१ ११	सुपास्वनाथ असि	सुपास्वनाथ आसि
५०	७	भणिआ	भणिओ
५१	१ १० १५	तहेण गेहंसु जम्म गिराण	तहेव गेहेसु जम्मगिराण
५२	१६	बंधेउं	बंधेउं
५३	२ ३ ८	जंपए पइसम० भणिउंइ	जंपए पहसम भणिउं
५५	२	व्वरखंभो	वरखंभो
५६	१ ३ ४ १२ १७	मणोइरं दटुं वालो वहुजण० स्वम्मि	मणोहरं दटुं बालो बहुजण० खंम्मि
६२	१	यायाकर०	यायावर०
	१ ७	राजशेखर या कपूरमंजरी	राजशेखर हा कपूरमंजरी
६४	६	णवकुलअ०	णवकुवलअ०

( ४ )

पान	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	६	पंचवाणस्स	पंचबाणस्स
	१९	जवनिकान्तरम्	यवनिकान्तरम्
६७	५	ठवेदु मिच्छेज्ज	ठवेदुमिच्छेज्ज
६९	३	हीणी	हीणी
७४	१	सामान्य	सन्मान
	१३	अपरि ग्रही	—
७५	१४	पज्जत	पज्जत
७६	२०	टाकण	टाकणे
७७	१०	(सेवा करना	— — —
७८	२	आशी विष	आशीविष
	१३	उव्वय	उव्वय
	१४	फिराणा	परिभ्रमण करना
८२	१०	यज	जय
	१४	उदटणे, केश लोंच	उपटणे, केशलोच
८३	४	हाती	हाथी
	७	जह	जूह
८४	१	सकना	शकना
८५	४	उपभोग दे	उपभोग दे
	६	(अभितः)	(अभितः) सब तरह
८६	१	करण	करणे
	३	भृग या	भृगया
	१३	चणकगुल्फेषु	चणकगुल्फेषु
८८	१४	चंदणदज्जा	चंदणवज्जा
८९	१२	उम्मण	मम्मण
	१३	पाथिव	पार्थिव
९०	४	पेयवमे	पेयवण
	५	रहपरास्त	रहपएत
९१	८	प्र+ज्ञापाय्	प्र+ज्ञापाय्
९२	६	धुमसण	धुमसणे
९३	१३	कुथु	कुथु
९५	११	डरफोक	डरपाक

\*●\*

# प्राकृत की उपयुक्त पुस्तकें

१. पाइयरयणावली (पढमो भागो)	०-६०
२. पाइयरयणावली (बीओ भागो)	०-६०
३. प्राकृतरत्नावली दीपिका (प्रथमा और द्वितीया परीक्षा)	१-२५
४. पायथकुसुमावली	२-५०
५. कहाणयतिगं	३-००
६. शृंगारमंजरी (सट्टक) विश्वेश्वरकृत	६-००
७. प्राकृतपुष्पावली	२-००
८. प्राकृतरत्नहार	२-५०
९. उत्तराध्ययनसूत्र ( १ ते २५ अध्याय )	५-००
१०. उत्तराध्ययनसूत्रम्	०-१०
११. श्री दशवैकालिकसूत्रम्	४-५०
१२. सुबोध प्राकृत व्याकरण (भाग १ ला)	०-६०
१३. सुबोध प्राकृत व्याकरण (भाग २ रा)	१-७०
१४. सुबोध प्राकृत व्याकरण (भाग ३ रा)	३-४०
१५. प्राकृत-परिच्छेद-सुभाषित-संग्रह	(प्रेस में)
१६. अंजणापवणजयवुत्तु	२-५०
१७. कुम्भापुत्तचरिय	(प्रेस में)
१८. प्राकृत व्याकरणम्	३-४०
१९. जैनतत्त्वदीपिका	०-७५
२०. श्री नन्दीसूत्रम्	६- ५
नवत साध	०-८०

